http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

पंचाध्यायी प्रवचन

भाग 8

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

पञ्चाध्यायी प्रवचन

[प्रथम भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक :

श्री नरेन्द्र कुमार जैन, (दरी वाले)
नया बाजार, सहारनपुर

प्रकाशक

मंत्री, भारत वर्षीय वर्णी जैन साहित्य मंदिर
मुजफ्फरनगर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पञ्चाध्यायी प्रवचन

[अष्टम भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी सहजानन्द' महाराज

उक्तो व्यवहारनयस्तदनु नयो निश्चयः पृथक् पृथक् ।
युगपद्द्वयं च मिलितं प्रमाणमिति लक्षणं वक्ष्ये ॥ ६६४ ॥

ग्रन्थकारका प्रमाण स्वरूप कहनेका संकल्प—पूर्व प्रसङ्गमें व्यवहारनयका स्वरूप भेद प्रभेद पूर्वक खुलासा बताया गया है और उसके बाद निश्चयनयका भी स्वरूप कहा गया है ? अब यहाँ यह बतायेंगे कि दोनों ही नय भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले तो हैं, किन्तु जब एक साथ दोनों नय मिल जाते हैं तो वही प्रमाणका स्वरूप कहलाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रमाणमें तो सर्व नयोंसे परिज्ञात जो वस्तु है उसको सर्वाङ्ग रूपसे माननेकी बात है। और नयोंमें प्रमाणसे गृहीत उस एक वस्तु के भिन्न-भिन्न अंशोंको ग्रहण करने वाली बात है। इस ही कारण यहाँ यह निर्देश किया गया है कि व्यवहारनय और निश्चयनय ये दोनों भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले हैं। व्यवहारनय जहाँ भेद करता है तो निश्चयनय वहाँ ऐसा भेद करता है कि वह वचनों के गोचर भी नहीं रह पाता। तो इन दोनोंका परस्परमें भिन्न-भिन्न स्वरूप है। लेकिन वस्तु न केवल व्यवहारनय मात्र है न केवल निश्चयनय मात्र है। वस्तु तो व्यवहारनय और निश्चयनय दोनोंको जो कुछ वहाँ समझा गया उस सर्वरूपसे विदित होता है। तो प्रमाण दोनों नयोंमें मिलकर कहलाता है। ऐसे उस प्रमाणका लक्षण इस प्रसङ्गमें कहेंगे।

विधिपूर्वः प्रतिषेधः प्रतिषेधपुरस्सरो विधिस्त्वनयोः ।
मैत्री प्रमाणमिति वा स्वपराकारावगाहि यज्ज्ञानम् ॥ ६६५ ॥

विधिप्रतिषेधकी मैत्री व स्वपराकारावगाहि ज्ञानकी प्रमाणरूपता—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नयोंका जो वर्णन किया गया था उसमें यह समझा गया कि व्यवहारनयका विषय तो विधि है और विधि होती है भेदपरक और निश्चयनयका विषय निषेध है सो ये दोनों बातें अलग-अलग नहीं हैं, किन्तु विधिपूर्वक प्रतिषेध होता है और प्रतिषेधपूर्वक विधि होती है। अब विधि और प्रतिषेधके द्वारा दोनोंकी जो मैत्री है वह प्रमाण कहलाता है। जैसे व्यवहारनयसे विधिके माध्यमसे जाना कि जीवमें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है आदिक और निश्चयनयसे यह जाना कि व्यवहारनयने जो कहा है वैसा पदार्थ नहीं है अर्थात् ज्ञान दर्शन चारित्र ये कोई जुदी वस्तु हों और फिर ये आत्माके पास रहते हों ऐसा नहीं है, किन्तु वह वस्तु अखण्ड है। तो वस्तु गुणरूप है, उसमें गुण है और वह अखण्ड है। गुणका भी वहाँ भेद नहीं है। इस तरहकी मैत्रीपूर्वक जो ज्ञान हो रहा है वह प्रमाण ज्ञान कहलाता है। अथवा दूसरे लक्षणसे देखिये कि प्रमाण ज्ञान वह है जो स्व और परको जानने वाला है। स्वका अर्थ स्वयं ज्ञान वह अपने आपको जानता है और परका अर्थ है सब पर पदार्थ। तो यों स्व और परको जानने वाला जो ज्ञान है वही प्रमाण कहलाता है। अब इसी प्रमाणके स्वरूपको स्पष्ट करते हैं।

अयमर्थोर्थविकल्पो ज्ञानं किल लक्षणं स्वतस्तस्य।
एक विकल्पो नयसादुभयविकल्पः प्रमाणमिति बोधः ॥६६६॥

प्रमाणके उक्त स्वरूपका स्पष्टीकरण – प्रमाणका जो स्वरूप कहा गया है उसका स्पष्टीकरण यह है कि ज्ञानका लक्षण ही अर्थविकल्प है अर्थात् पदार्थाकार प्रतिभासके परिणमन करनेका ही नाम अर्थ विकल्प है। जब ज्ञानकी वृत्ति बनती है तो उसका स्वरूप यों ही निर्मित होता है कि वहाँ परपदार्थके सम्बन्धमें कोई प्रतिभास किया जारहा है। तो वह प्रतिभास क्या है? पर पदार्थका ग्रहण रूप है। यद्यपि पर पदार्थको ज्ञान ग्रहण नहीं करता, ज्ञान आत्मप्रदेशोंमें रहता है, पर पदार्थ परमें रहता है फिर भी पर पदाथ विषयक जो जानकारी हो रही है वह उस ही पदार्थाकार कहलाती है। तो यों पदार्थाकार परिणमन करनेका नाम अर्थविकल्प है। अब उस ज्ञानमें प्रकार निरखिये! वह ज्ञान जब एक विकल्प होता है अर्थात् एक अंशको विषय करता है तो वह ज्ञान नयाधीन रहता है याने वह नयरूप ज्ञान है। जो पदार्थके एक अंशको विषय करे उसे नय कहते हैं और वही ज्ञान जब उभय विकल्प रूप होता है अर्थात् सभी अंशोंको ग्रहण करने वाला होता है तब वही प्रमाण कहलाने लगता है। जितने भी इसमें धर्म कहे जा सकते हैं उनको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। एक सामान्य दूसरा विशेष। तो पदार्थके सामान्यरूपसे वह प्रतीत होता है और विशेषरूपसे भी प्रतीत होता है। पदार्थके सम्बन्धमें जो अनुगत प्रतीति है उसे सामान्य प्रतीति कहते हैं। यह वही है, सभी पदार्थोंमें वही यह है, ऐसा जिस धर्मको लेकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सामान्यतया प्रतीति हो रही हो उसको कहते हैं सामान्य प्रतीति। और विशेष विशेष पर्यायरूप प्रतीति होती हो, जहाँ विशेष विशेष रूपसे समझा जा रहा हो, उसे विशेष प्रतीति कहते हैं। तो यों दोनों प्रकारकी प्रतीतियाँ पदार्थमें तब ही सम्भव हैं जबकि वह सामान्य विशेषात्मक हो। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है तभी ज्ञान सामान्य और विशेष दोनों प्रकारसे प्रतीति होती है। तो इससे ही यह सिद्ध हुआ कि पदार्थ उभयात्मक है अर्थात् सामान्य विशेष स्वरूप है। न्याय व सिद्धान्त शास्त्रोंमें भी ऐसा ही वर्णन किया गया है कि प्रमाणका जो विषय है वह सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है। अब उनमेंसे जो सामान्य अंशको ग्रहण करे वह तो द्रव्यार्थिक हुआ और विशेष अंशको जो ग्रहण करे वह पर्यायार्थिक हुआ। तो दोनों अंशोंको एक साथ कोई विषय करे तो वह प्रमाणज्ञान कहलाता है।

ननु चास्त्येविककल्पोप्यविरुद्धोभयविकल्प एवास्ति ।
कथमिव तदेकसमये विरुद्धभावद्वयोर्विकल्पः स्यात् ॥६६७॥

अथ चेदस्ति विकल्पो क्रमेण युगवद्धा बलाद्वाच्यः ।
अथ चेत् क्रमेय नय इति भवति न नियमात्प्रमाणमितिदोषः ६६८

युगपच्चेदथ न मिथो विरोधिनोर्योगपद्यं स्यात् ।
दृष्टि विरुद्धत्वादपि प्रकाशतमसोद्वयोरिति चेत् ॥६६९॥

विरुद्ध धर्मोंके एकत्र रहनेकी विधिकी जिज्ञासा—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि कोई एक विकल्प हो वह अविरोधी दो विकल्पों वाला हो सकता है, अर्थात् एक वस्तुमें अविरोधी कई धर्म रह सकते हैं परन्तु कोई भी विकल्प एक ही समयमें विरोधी दो भावोंरूप कैसे हो सकता है। यहाँ तो प्रमाणका स्वरूप बनानेके लिए दो विरोधी धर्मोंको एक साथ बताया जा रहा है, परन्तु यह बात असम्भव है कि एक समयमें विरोधी दो भावोंका विकल्प कैसे बन सकता है ? यदि विरोधी दो भावों के विकल्प माने जायें तो यह बताओ कि वे दो विकल्प क्रमसे हो सकते हैं या एक साथ उनका प्रयोग किया जा सकता है ? यदि विरोधी दो धर्मोंको क्रमसे माना जाता है तो जब क्रम रहा तो एक समयमें एक ही नय रहा। तो यों नयका ही स्वरूप बना, प्रमाण तो न बन सका। यदि कहा जाय कि वे दोनों धर्म एक साथ होते हैं तो भला इसे कौन मानेगा कि विरोधी धर्म एक साथ रह सकते हैं। जैसे अंधकार और प्रकाश ये दो विरोधी धर्म हैं तो इनका एक साथ रहना सम्भव नहीं है। सभी लोग इस बातसे परिचित हैं तो इसमें अधिक प्रमाण क्या देना है ? दो विरोधी धर्म एक साथ सम्भव नहीं हो सकते हैं। फिर प्रमाणका लक्षण कैसे बन सकेगा कि दोनों नय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिलकर प्रमाण कहलाते हैं ? अब इस शङ्काका समाधान करते हैं।

न यतो युक्तिविशेषाद्युगपद् वृत्तिर्विरोधिनामस्ति।
सदसदनेकेषामिह भावाभावध्रुवाध्रुवाणाश्च ॥ ६७० ॥

विरोधी धर्मोंके एकत्र रहनेकी विधि—समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकार की उक्त शङ्का सङ्गत नहीं है, क्योंकि युक्तिविशेषसे विरोधी धर्मोंकी एक साथ वृत्ति हो सकती है। जैसे सत् असत्, भाव अभाव, नित्य अनित्य, भेद अभेद ध्रुव अध्रुव आदिक अनेक धर्मोंकी एक पदार्थमें वृत्ति होना सम्भव है। भले ही स्थूल दृष्टिसे सत् असत् आदिक धर्म परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। जो सत् है वह असत् कैसे ? जो असत् है वह सत् कैसे ? तो उनमें विरोध प्रतीत होता है लेकिन जब सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय, सापेक्ष दृष्टि रखकर जब इसकी मीमांसा की जायगी तो ये सब अविरोधी प्रतीत होने लगेंगे। अब दूसरी निगाहसे इस निर्णयको सुनिये ! एक पदार्थमें विरोधी दो धर्म बन रहे तो यह तो पदार्थका स्वभाव है, असम्भवता कैसे कही जायगी ? परस्पर विरोधी धर्मोंको भी एक समयमें पदार्थ धारण करे यह तो द्रव्य और पर्याय शक्तिके कारण सङ्गत ही है। द्रव्य दृष्टिसे पदार्थ सदा सतरूप है तो वही पदार्थ पर्याय दृष्टिसे असत है। द्रव्य दृष्टिसे पदार्थ भावरूप है। तो वही पदार्थ पर्याय दृष्टिसे अभावरूप है। ऐसे ही समझना चाहिए कि पदार्थ नित्यरूप और अनित्यरूप भी है। सिद्धान्त शास्त्र इस तथ्यका विवाद करता है कि पदार्थ पर्याय दृष्टिसे उत्पन्न होता है और नष्ट होता है परन्तु द्रव्य दृष्टिसे न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है, तभी तो यह बात समंतभद्राचार्यने बताया कि सत् सामान्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो सर्व पदार्थोंमें समानता है, अथवा सभी पदार्थ एक हैं और जब द्रव्यादिकका भेद करके निरखा तो पदार्थ पृथक पृथक हैं। जैसे कि एक असाधारण हेतुकी तरह। वही हेतु अपना साध्य सिद्ध करनेके लिए हेतुरूप है, पर असाध्य सिद्ध करनेके लिए वह अहेतु रूप है। तो इसी तरह पदार्थ भी द्रव्य क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे भिन्न भिन्न है, अनेक है, परन्तु वही पदार्थ सत् सामान्यकी अपेक्षासे अभिन्न है, एक रूप है, इस कारण पदार्थ कथञ्चित भेद विवक्षासे एक अनेक, भिन्न अभिन्न आदिक अनेक धर्मों वाला हो जाता है। वह धर्म अपेक्षा दृष्टि लगाये बिना विरोधी प्रतीत होता है और वह ही धर्म अपेक्षा दृष्टि लगाकर अविरोधी प्रतीत होने लगता है।

अयमर्थो जीवादौ प्रकृतपरामर्शपूर्वकं ज्ञानम्।
यदि वा सदभिज्ञानं यथा हि सोयं बलाद्द्वयामर्शि ॥६७१॥

व्यवहार व निश्चयके परामर्श पूर्वक हुए ज्ञानमें सदभिज्ञानता व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमाण रूपता—प्रमाणके स्वरूपमें जो कुछ कहा गया है उसका भावार्थ यह है कि जीवादिक पदार्थोंके विषयमें व्यवहार और निश्चयनयके विचार पूर्वक जो ज्ञान होता है वह प्रमाण ज्ञान कहलाता है। अथवा प्रमाणका लक्षण दूसरी प्रकारसे यों कह सकते हैं कि पदार्थके सम्बन्धमें जो सत् अभिज्ञान अर्थात् एकत्व प्रत्यभिज्ञानकी तरह का बोध है जो कि एक वस्तुके सामान्य और विशेष दोनों अवस्थाओंको एक समयमें ग्रहण कर सके ऐसे ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। प्रमाण वस्तुका सर्वात्मक बोध है। वस्तुमें जो अंश है उनको दो विभागोंमें कहा जा सकता है एक सामान्य दूसरा विशेष। सामान्यके तो भेद नहीं होते, कुछ विशेष विभिन्न प्रकारके होते हैं। यों सामान्य विशेष धर्मयुक्त जो ज्ञान है उसका नाम प्रमाण है। जैसे यह वही है ऐसा कहनेमें कुछ सामान्यका भी बोध हो और विशेषका भी इनके साथ बोध होता है, ऐसे सामान्य विशेषात्मक ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। अब इसीका स्पष्टीकरण दृष्टान्त द्वारा करते हैं।

सोयं जीवविशेषो यः सामान्येन सदिति वस्तुमयः।
संस्कारस्य वशादिह सामान्यविशेषजं भवेज्ज्ञानम् ॥ ६७२ ॥

सदभिज्ञानका उदाहरण—यहाँ वही जीव विशेष है जो सामान्यरूपसे सन्मात्र वस्तुरूप है। उस ही सतपदार्थमें संस्कारके कारण जो सामान्य विशेष जन्य ज्ञान होता है उसको प्रकाणज्ञान कहते हैं। वस्तु तो जब सामान्य दृष्टिसे परखा गया तो वह विशेष पदार्थरूप प्रतीत होता है। जैसे वस्तुमें साधारण और असाधारण गुण होते हैं तो वस्तु जब ग्रहणमें आता है तो यह नहीं है कि साधारण धर्म न आयें ग्रहणमें और असाधारण धर्म आ जायें। ऐसा भी न हो सकेगा कि असाधारण धर्म ग्रहणमें आ जायें और साधारण धर्म ग्रहणमें न आयें। तब ही वस्तुका बोध होता है तो साधारण असाधारण धर्मोंयुक्त एक वस्तुका ग्रहण होता है। सामान्य दृष्टिसे वस्तु भले ही सन्मात्र प्रतीत है विशेष दृष्टिसे वही वस्तु विशेष पदार्थरूप प्रतीत है। पर यह भी तो बात है कि जो जीव पदार्थ सन्मात्र प्रतीत हो वही जीव विशेष भी जाना जाता है। तो यों सन्मात्र और जीव विशेष इनका बोध एक साथ होता है। वही समझिये। सामान्य विशेषको विषय करने वाला प्रमाणज्ञान है!

अस्त्युपयोगि ज्ञानं सामान्यविशेषयोः समं सम्यक।
आदर्शस्थानीयात् तस्य प्रतिबिम्बमात्रतोऽन्यस्य ॥ ६७३ ॥

युगपत् सामान्य विशेषके उपयोगात्मक ज्ञानका निर्देशन—यहाँ किसी को यह जिज्ञासा हो सकती है कि सामान्य और विशेषका उपयोगात्मक ज्ञान क्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक साथ हो सकता है ? वस्तुमें साधारण धर्म है और असाधारण धर्म है। अब उन सबका उपयोगात्मक ज्ञान एक साथ किस प्रकार होता होगा ? ऐसी जिज्ञासा यदि किसीको हुई हो तो उसका समाधान भी इस गाथामें दिया गया है। सामान्य विशेष का उपयोगात्मक ज्ञान एक साथ हो सकता है। उसके लिए यह दृष्टान्त दिया गया है कि दर्पणमें जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वह प्रतिबिम्ब यद्यपि दर्पणसे कथञ्चित भिन्न है, क्योंकि वह दर्पणका स्वभाव नहीं है। उपाधिका निमित्त पाकर दर्पणपर विकार आया है। वह प्रतिबिम्बविकार दर्पणसे कथञ्चित भिन्न है तो भी उस प्रतिबिम्बका और दर्पणका एक साथ बोध होता है और यह भी बात है कि दर्पण और प्रतिबिम्ब ये एक ही अर्थमें तो हैं, कोई भिन्न भिन्न पदार्थ नहीं हैं। यों हीं समझिये कि अनेक प्रकारका जो चित्रज्ञान होता है सो वहाँ अनेकका ज्ञान हुआ ना, और एक साथ हुआ है तो इससे ही यह जान सकते हैं कि सामान्य और विशेषका उपयोग करने वाला ज्ञान एक साथ हो सकता है इसमें किसी भी प्रकारका संदेह नहीं है, और जब सामान्य विशेषका एक साथ उपयोगी ज्ञान है तो उस ही ज्ञानको प्रमाण ज्ञान कहा जाता है तो प्रमाण ज्ञान वस्तुका सकलादेश ज्ञान होता है।

ननु चैवं नययुग्मं व्यस्तं नय एव न प्रमाणं स्यात् ।
तदिह समस्तं योगात् प्रमाणमिति केवलं न नयः ॥ ६७४ ॥

सामान्यविशेषोपयोगी ज्ञानमें नयत्व या प्रमात्व किसी एककी सिद्धि की आशङ्का - अब यहां शङ्काकार कहता है कि प्रमाणका यहाँ भिन्न स्वरूप क्या आया ? दोनों नय जब अलग अलग प्रयुक्त किए जाते हैं तब तो वे नय कहलाते हैं और जब उन दोनों नयोंको मिलाकर एक साथ प्रयोगमें लाया जाता है तब उसे आप यहाँ प्रमाण कहने लगे। तो नय चीज क्या रही प्रमाणसे अलग ? बात वही ज्ञानमें आई जो नयोंमें आ रही थी। नयोंसे निराला कुछ ज्ञान प्रमाणने नहीं किया। हाँ, इतना भर भेद हुआ कि जब अलग अलग प्रयोग किया तो नय हो गया और जब एक साथ प्रयोग किया तो प्रमाण बताने लगे। तो कह लीजिए उनको कि वह नयोंका एक साथ वाला प्रयोग है और कोई होता है नयोंका भिन्न भिन्न रूपका प्रयोग। तो प्रयोग करनेकी पद्धतिमें ही अन्तर आया, चीज तो वह एक ही है। जैसे नय कहा है पहिले विस्तार पूर्वक, तो वह सब नय ही है। और, नयोंसे निराला प्रमाण कुछ न कहलायगा। तब प्रमाणका स्वरूप करनेका संकल्प करना और प्रमाणकी बात करना यह सब सङ्गत नहीं बैठता। अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

तन्न यतो नययोगादतिरिक्तरसान्तरं प्रमाणमिदम् ।
लक्षणविषयोदाहृति हेतुफलाख्यादिभेदभिन्नत्वात् ॥ ६७५ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नयोंसे प्रमाणकी विलक्षणता होनेसे नय और प्रमाण दोनोंकी सिद्धि शङ्काकारकी उक्त शङ्का यों सङ्गत नहीं है कि प्रमाण नयोंके योगका नाम नहीं है। भिन्न भिन्न प्रकारसे नयोंका प्रयोग करें अथवा नयोंका योग करदें उन नयोंको मिला दें तो भी उससे प्रमाणका स्वरूप जाहिर नहीं होता। प्रमाण तो नयोंके योगसे कोई भिन्न ही वस्तु है। इसका स्वरूप विस्तारपूर्वक जानना है तो प्रमाणके सम्बन्धमें कई बातें परख लेनेसे प्रमाणका स्पष्ट रूप जाना जा सकता है। प्रमाणका लक्षण, प्रमाणका विषय, प्रमाणके उदाहरण, प्रमाणके हेतु, प्रमाणके फल और प्रमाणके भेद ये सब न्यारे-न्यारे हैं। अर्थात् नयोंके विषय उदाहरण आदिक दूसरे हैं और प्रमाणके विषय उदाहरण आदिक दूसरे हैं, लेकिन नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। तो नय ही प्रमाण कैसे कहलाने लगेंगे? न जुदे-जुदे रहकर नय प्रमाण बनेंगे और न नयों का योग मिलकर प्रमाण बन सकेंगे। प्रमाण नयोंसे भिन्न ही वस्तु है।

तत्रोक्तं लक्षणमिह सर्वस्वग्राहकं प्रमाणमिति।
विषयो वस्तुसमस्तं निरंशदेशादिभूरुदाहरणम् ॥ ६७६ ॥

सोदाहरण प्रमाणकी सर्वस्वग्राहकताका निर्देश—प्रमाणका लक्षण नयोंसे भिन्न है और विषय उदाहरण भी भिन्न है। इस बातका स्पष्टीकरण संकेत रूपमें इस गाथामें किया गया है। प्रमाणका लक्षण तो वह है जो पहिले कहे। जैसे थोड़े शब्दोंमें यों कह लीजिए कि जो वस्तुका सर्वस्व ग्रहण करे उसको प्रमाण कहते हैं। अब देखिये! प्रमाणका लक्षण है जो वस्तुका सर्वस्व ग्रहण करे और नयका लक्षण है जो वस्तुके एक अंशको ग्रहण करे। तो लक्षणमें ही अन्तर आ गया। विषय प्रमाणका है समग्र वस्तु और नयका विषय है कोई अंश। उदाहरण भी इनके न्यारे-न्यारे हैं। एक अंशको जहाँ ग्रहण कराया हो ऐसे उदाहरण तो नयोंके मिलेंगे और वस्तुके सर्वस्वका ग्रहण कराया गया हो, ऐसे उदाहरण प्रमाणके मिलेंगे। तो जिसका लक्षण विषय और उदाहरण भिन्न हैं वह नय कैसे कहला सकता है? प्रमाण नयोंसे भिन्न ही ज्ञान है।

हेतुस्तत्त्वबुभुत्सोः संदिग्धस्याथवा च बालस्य।
सार्थमनेकं द्रव्यं हस्तामलकवदवेतुकामस्य ॥ ६७७ ॥

प्रमाणकी सर्वस्वग्राहकताका प्रतीत कारण—अब प्रमाणका हेतु इस गाथामें बतला रहे हैं। प्रमाणका हेतु है प्रमाणको स्पष्ट और पूर्ण जाननेकी इच्छा। जो कोई पुरुष मंदबुद्धि हो अथवा जिसको किसी तत्त्वमें संदेह हुआ हो, ऐसा कोई भी जो तत्त्वके जाननेकी इच्छा रख रहा है उसकी भीतरी इच्छा तो देखिये! क्या उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की इतनी ही इच्छा है कि मैं वस्तुके किसी एक ही धर्मको जानलूं। वह सबसे कम जाननेकी इच्छा नहीं रखता। भले ही कभी कुछ कम जान सके, लेकिन जाननेकी इच्छा सब जीवोंमें सब कुछ जाननेकी होती है। अब यह अपनी-अपनी पर्यायकी योग्यता है कि उसकी दृष्टिमें सारा कितना कहलाता है, मगर इच्छा होती है सबको जाननेकी। और इस तरह जानना कि जैसे एक साथ अनेक द्रव्योंको हाथमें रखे हो कोई तो उसे हाथपर रखे हुए आवलाकी तरह जाननेकी इच्छा होती है। जैसे कि आवला हाथपर रखा है, पूरा ज्ञानमें आ रहा है इसी तरह सबको पूरा स्पष्ट जानने की इच्छा जीवमें रहती है। यही इच्छा प्रमाणकी निष्पत्तिका कारण बनती है। यह है प्रमाणका हेतु।

फलमस्यानुभवः स्यात्समक्षमिव सर्ववस्तुजातस्य।
आख्या प्रमाणमिति किल भेदः प्रत्यक्षमथपरोक्षं च। ६७८।

प्रमाणका फल और प्रमाणके भेद इस गाथामें प्रमाणका फल, प्रमाण का नाम और प्रमाणके भेदोंका वर्णन किया गया है। पहिले यह बताया गया था कि प्रमाण नयोंसे भिन्न है और उस भिन्नताका कारण बताया गया था कि लक्षण, विषय, उदाहरण, हेतु, फल, नाम और भेद ये नयोंसे निराले हैं प्रमाणके, इस कारण प्रमाण नयोंसे भिन्न है। तो इनमेंसे लक्षण, विषय, उदाहरण और हेतुके विषयमें वर्णन कर दिया गया है। अब यहाँ बतलाते हैं कि प्रमाणका फल क्या है? प्रमाण का फल है प्रत्यक्षकी तरह समस्त वस्तुका अनुभव होना। प्रमाण ज्ञान जब होता है तो उस प्रमाण ज्ञानके फलमें बात क्या गुजरती है? वह इस गाथामें बताया है। साफ रीतिसे सम्पूर्ण वस्तु मात्रका अनुभव होता है प्रमाणके फलमें और नयोंके फलमे वस्तुके एक अंशका परिचय हो रहा है। वहाँ समग्र वस्तु प्रत्यक्षकी तरह अनुभवमें नहीं आता। तो यों नयोंसे प्रमाणका फल निराला है। प्रमाण और नयोंमें नामभेद भी है। प्रमाणका नाम प्रमाण है और नयका नाम नय है। जो कि व्युत्पत्तिके ढङ्गसे भी नामके अनुकूल मर्म जान लिया जाता है और यह समझ बनती है कि हाँ ऐसे दो नाम रखना सही है। प्रमाण शब्दका व्युत्पत्त्य अर्थ है प्रकृष्ट रूपसे वस्तुका पूर्णज्ञान ध्वनित हो वह प्रमाण है और प्रमाणसे ग्रहण किए हुए वस्तुके किसी एक धर्ममें जो ले जाय उसे नय कहते हैं। तो नय और प्रमाणके नाम भी जुदे-जुदे हैं, भेद भी निराला है। प्रमाणके भेद हैं प्रत्यक्षसे विरुद्ध, फिर उनके और प्रभेद चलते हैं जबकि नयोंके भेद हैं द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। तो इस तरह जैसे प्रमाणके लक्षणमें भेद है, प्रमाण तो होता है सकलादेशजन्य, नय होता है विकलादेशजन्य। और जिस तरह प्रमाणके विषय, उदाहरण, हेतु आदि जुदे हैं उसी प्रकार ये फल, नाम और भेद भी जुदे हैं। अतः प्रमाण नयोंसे भिन्न हैं। इनमेंसे किसी एकका भी यदि लोप किया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है तो दूसरेका भी लोप हो जाता है। मानो कि प्रमाण ही माना जाय, नय न माना जाय तो प्रमाणका स्वरूप भी न बनेगा। या नय माना जाय, प्रमाण न माना जाय तो नयका भी स्वरूप न बनेगा। अतः दोनोंका मानना आवश्यक है और इन दोनोंका लक्षण विषय, उदाहरण आदिक सब जुदे-जुदे हैं। अथवा यों समझिये कि चाहे माध्यममें कोई एक मुख्य विशेष ॥ ही रखा जा रहा हो परिज्ञानके लिए, लेकिन जहाँ एक विशेषणके सहारे वस्तुके सर्वस्व स्वरूपका ग्रहण होता हो वह तो है प्रमाण और जहां उस विशेष विवरणके सहारे उस ही विशेषणका प्रतिपादन हो रहा हो तो उसको नय कहते हैं। यों नयका स्वरूप प्रमाणसे जुदा है लेकिन परस्परमें इनका सहयोग है। प्रमाणसे ग्रहण किए गए पदार्थके ही किसी विशेष अंशको ग्रहण करना नय कहलाता । नय यदि स्वतंत्र निरपेक्ष हो जायगा तो वह मिथ्या हो जायगा। नय न रहेगा और सब नयोंसे जो जो कुछ समझा जाता है उस सबका सर्वस्वके एक विकल्पमें जो बोध होता है उसे प्रमाण कहते हैं।

ज्ञानविशेषो नय इति ज्ञानविशेषः प्रमाणमिति नियमात् ।
उभयोरन्तर्भेदो विषयविशेषान्न वस्तुतो भेदः ॥ ६७९ ॥

प्रमाण और नयमें विषयभेदसे भिन्नताका प्रदर्शन – प्रमाण एक ज्ञान विशेष है और नय भी एक ज्ञानविशेष है। ज्ञानकी दृष्टिसे देखा जाय तो प्रमाण और नयमें कुछ भी भेद नहीं है, वह भी ज्ञानका एक रूप है और नय भी ज्ञानका एक रूप है, किन्तु जब विषय विशेषपर दृष्टि देते हैं तो विषय विशेषकी अपेक्षासे प्रमाण और नय इन दोनोमें भेद सिद्ध हो जाता है। ज्ञानात्मकताकी दृष्टिसे तो कोई भेद नहीं है, लेकिन विषय तो जुदे-जुदे हैं। प्रमाण किसी और ही विषयको संकेत करता है। तो यों विषयोंके भेदसे इन दोनोंमें भेद है। यद्यपि वे विषय भी वस्तुके अन्तर्गत ही हैं। याने वस्तु सम्बन्धी ही विषय नयका है और वस्तु सम्बन्धी ही विषय प्रमाणका है। तो वस्तु सम्बन्धी विषय होनेपर भी प्रमाणके विषयका विशाल विस्तार है और पद्धति जुदी है और नयका विषय प्रमाणके विषयसे छोटा है, केन्द्रित है खण्डरूप है। यों विषयके भेदसे प्रमाण और नयमें भेद जाना जाता है। अब इस ही विषयका स्पष्टीकरण करते हैं कि प्रमाण और नयके विषयका किस तरह भेद है ?

स यथा विषयविशेषो द्रव्यैकांशो नयस्य योन्यतमः ।
सोप्यपरस्तदपर इह नखिलं विषयप्रमाणजातस्य॥ ६८० ॥

प्रमाण और नय विषय भेदका विवेचन—प्रमाणका विषय और नयका विषय भिन्न-भिन्न है, उसे इस तरह जानें कि द्रव्यके अनन्त गुणोंमेंसे कोई सा भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुण विवक्षित बने तो विवक्षित अंश नयका विषय है और वह अंश तथा अन्य भी अंश यों अनन्त गुणात्मक सर्वथात्मक वस्तु प्रमाण का विषय है प्रमाण और नयके लक्षण के आधारसे भी विषयोंके भेदका स्पष्टीकरण हो जाता है। नयके लक्षण में यह कहा गया है कि प्रमाणसे ग्रहण किए हुए वस्तुके एक देश अंशको ग्रहण करे उसे नय कहते हैं। तो इसमें ही भेद नजर आयगा। प्रमाणसे ग्रहण किया गया है समस्त वस्तु और उसमेंसे फिर एक अंशको ग्रहण किया है नयने तो नयका विषय हुआ खण्ड रूप और प्रमाणका विषय हुआ सर्वांश रूप अखण्ड पूर्णवस्तु। तो यों विषयभेद आया कि वह समस्त वस्तु तो प्रमाणका विषय है और वस्तुका कोई विवक्षित गुण अंश नयका विषय है। यों प्रमाण और नयमें अन्तर हैं। शङ्काकारका यह आशय कि प्रमाण और नय भिन्न भिन्न नहीं हैं, असङ्गत है।

यदनेकनयसमूहे संग्रहकरणादनेक धर्मत्वम्।
तत्सदपि न सदिव यतस्तदनेकत्वं विरुद्धधर्ममयम् ॥ ६८१ ॥

यदनेकांशग्राहकमिह प्रमाणं न प्रत्यनीकतया।
प्रत्युत मैत्रीभावादिति नयभेदाददः प्रभिन्नं स्यात् ॥ ६८२ ॥

नयसमूहसे भिन्न प्रमाणकी असिद्धिकी आशङ्का और उसका समाधान

यहाँ शङ्काकार कहता है कि अनेक नयोंके समूहमें ऐसा संग्रह किया गया तो संग्रह करनेसे ही तो वस्तुमें अनेक धर्मपना आया अर्थात् नयने तो एक-एक अंशको जाना और ऐसे जाने गए एक-एक अंशोंका संग्रह जब किया गया तब उनका संग्रह कर देने पर वस्तुका अनेक धर्मपना बना और अनेक धर्मपना प्रमाणका विषय माना गया है। तो प्रमाणमें जो अनेक धर्मता आई है वह अनेक नयोंका समूह बनानेपर आई है इस लिए प्रमाण कोई स्वतंत्र ज्ञान विशेष नहीं है किन्तु नय ही ज्ञानविशेष है और उन सब नयोंका समूह बना उसी को ही प्रमाण शब्दसे कह दिया जाता है। तो अनेक नयोंके समूहको ही प्रमाण कहना चाहिए। प्रमाण नयोंसे कोई भिन्न ज्ञान नहीं है। इस आशङ्काका आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि यह आशङ्का यद्यपि कुछ ठीक ही जच रही है, स्थूल दृष्टिसे जो समझ रहे होंगे उन्हें यह भला जच रहा है कि एक-एक अंशको नयने ग्रहण किया, ऐसे सब नय इकट्ठे मिल जायें तो अनेक अंशात्मक वस्तु जान ली जायगी। और यों फिर प्रमाण कोई भिन्न ज्ञान न रहा। सुननेमें साधारणतया यह बात ठीक लग रही है फिर भी यह ठीक नहीं है, क्योंकि अनेक नयों के संग्रह करनेसे जो अनेक धर्मोंका संग्रह होगा वह विरुद्ध धर्ममय होगा। शङ्काकारने बताया यह है कि नय एक एक अंशको जानता है और उन सबको मिला दिया जाय तो ऐसे अनेक नयोंसमूहका ही प्रमाण कहलायगा। सो यह बात यों युक्त नहीं होती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि नय तो प्रत्येक अपनेसे विरुद्ध धर्मका प्रतिपादन न करके बल्कि उनका विरोध रख कर अपने विषयका प्रतिपादन करता है यह तो ज्ञाताका अभिप्राय है कि वह अन्य नयोंकी अपेक्षा रखता हुआ प्रकृत नयका परिज्ञान करे, किन्तु नयके स्वरूपमें यह बात नहीं भरी है कि वह प्रतिपक्षी धर्मका भी आदर करता हुआ अपने धर्मका प्रतिपादन करे। नय तो एक दूसरेसे प्रतिपक्ष विरोधी धर्मोंका ही विवेचन करता है। तो जहाँ विरोधी धर्मोंका विवेचन हुआ और उन विरोधी धर्मोंका समूह प्रमाणको विषय मान लिया जाय तो वह विरोध होगा। प्रमाण तो अनेक अंशोंका ग्रहण विरोध रीतिसे नहीं करता, किन्तु परस्पर मैत्री भाव पूर्वक ही उन अंशोंको ग्रहण करता है, इस कारण प्रमाण नयसे भिन्न ही ज्ञान विशेष है। नयोंका पहिले बहुत विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है, उस विवेचनसे यह जान लिया होगा कि प्रत्येक नय एक एक धर्मको विरोध रीतिसे ग्रहण करता है लेकिन प्रमाण तो वस्तुके सर्व अंशोंको, वस्तुके सर्वस्वको अविरोध रूपसे ग्रहण करता है और नय विरुद्ध रूपसे ग्रहण करे, प्रमाण अविरुद्ध रूपसे ग्रहण करे, इसका कारण यह है कि सर्व अंशोंको विषय करने वाला एक ही तो ज्ञान है जिसे प्रमाण कहते हैं। प्रमाणने वस्तुके सर्वस्वको ग्रहण किया तो वहाँ ऐसा नहीं है कि एक एक अंशके ज्ञान करने वाले अनेक ज्ञान हैं और उन ज्ञानों का समूह प्रमाण बन गया। वह सारा ही ज्ञान एक है जो वस्तुके सर्वस्वको जान रहा है। नयोंमें जो भिन्न भिन्न अंश जाने जा रहे हैं वो विभिन्न अंशोंको जानने वाले विभिन्न ज्ञान हैं। यों नयका विषय भिन्न है और प्रमाणका विषय भिन्न है। जैसे एक ज्ञान रूपको ही जानता है दूसरा ज्ञान रसको जानता है, तीसरा ज्ञान गंधको जानता है, चौथा ज्ञान स्पर्शको जानता है। अब ये चार प्रकारके ज्ञान एक दूसरेसे विरुद्ध हैं विषय भी एक दूसरेसे विरुद्ध है, परन्तु प्रमाण द्वारा जो एक वस्तुका ज्ञान होगा, अथवा रूपादिक चार प्रकारके गुणोंके समुदायात्मक एक द्रव्यका जो ज्ञान होगा वह अविरुद्ध ही होगा। यही बात प्रमाण और नयके विषयमें भी घटित कर लेना चाहिए जैसे पदार्थका नित्य अंश जाना द्रव्यार्थिकनयने और पदार्थका अनित्य अंश जाना पर्यायार्थिकनयने तो यहाँ नित्य अंश और अनित्य अंश परस्पर विरुद्ध ही तो हुए। नित्यका स्वरूप और है अनित्यका और है, लेकिन पदार्थमें तो ये दोनों ही धर्म रह रहे हैं। द्रव्य तो नित्य है, पर्याय अनित्य है। तो दोनों ही मिलकर पदार्थ स्वरूपके साधक हैं। तो यहाँ प्रत्येक पक्षका जो स्वतंत्र ज्ञान है वह दूसरे पक्षका विरोधी बन रहा है, यह प्रक्रिया तो नयोंमें चलती है, परन्तु प्रमाणमें यह प्रक्रिया है कि दोनों पक्षोंका जो समुदायात्मक ज्ञान है सो यद्यपि वह परस्पर स्वरूपमें विरोधी है लेकिन अविरुद्ध रूपसे एक ही पदार्थमें दोनों ही पक्षोंका एकान्तात्मक रूपसे परिज्ञान हो रहा है, यह है प्रमाणका विषय। इस तरह प्रमाण नयोंसे भिन्न ज्ञान विशेष है, इसमें किसी प्रकारका संदेह न करना चाहिए।

ननु युगपदुच्यमानं नययुग्मं तद्यथास्ति नास्तीति ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एको भङ्गः कथमयमेकांशग्राहको नयो नान्यत् ॥ ६८३ ॥

अस्तिनास्ति वाले नययुग्मरूप भङ्गमें नयका लक्षण अघटित होनेकी आशंका—यहाँ शङ्काकार कहता है कि स्यात् अस्ति नास्ति, यों एक साथ कहा हुआ यह नय युग्म अर्थात् अस्ति एक नय है, नास्ति दूसरा नय है। और, इन दोनों नयोंको एक साथ कहना है तो एक साथ कहा हुआ यह नय युगल एक भङ्ग कहलाया। तो यह भङ्ग नय कैसे कहलायगा ? क्योंकि नय तो माना ही गया है उसे कि जो एक अंशको ग्रहण करे। अब यहाँ तो दोनों अंशोंको एक साथ ग्रहण किया गया है, इस कारण इसे भी प्रमाण कह देना चाहिए। सप्तभङ्गीकी प्रक्रियामें ७ भङ्ग बताये गए है वे ७ भङ्ग एक एक अंशके रूपसे ही तो हैं। तभी तो ७ भङ्गोंका समुदायात्मक ज्ञान प्रमाण कहलाता है। तो उन ७ भङ्गोंमें जैसे पहिला भङ्ग कहा गया है स्यात् अस्ति, दूसरा भङ्ग बताया गया है स्याद् नास्ति, तीसरा भङ्ग कहा गया है स्याद अस्ति नास्ति, तो इस तीसरे भङ्गके बारेमें यह आशङ्का है कि स्याद अस्ति नास्ति, यह तो दोनों नयोंका समूह है तो एक अंशका ग्रहण करने वाला विकल्प तो नहीं। इस तीसरे विकल्पने तो दो अंशोंको ग्रहण किया है। तो जब दो अंशोंको ग्रहण किया तो इसे प्रमाण कहना चाहिए। इसे भङ्ग क्यों बताया गया है ? ऐसी शङ्काकारकी पहिली आशङ्का है। अब शङ्काकारकी द्वितीय आशङ्का सुनिये !

अपि चास्ति न चास्तीति समभेकोक्त्या प्रमाणनाशः स्यात् ।
अथ च क्रमेण यदि वा स्वस्य रिपुः स्वयमहो स्वनाशाय ॥६८४

अस्ति नास्तिकी युगपत् उक्तिरूप भङ्गसे ही वस्तुपरिज्ञान हो जानेसे प्रमाणके माननेकी व्यर्थताकी आशङ्का—शङ्काकार दूसरी आशङ्कामें यह बात रख रहा है कि अस्ति और नास्ति ये दोनों धर्म एक साथ कहे जा रहे हैं तो जब एक साथ कही जाने वाली बातको भङ्ग मान लिया गया तब तो प्रमाणका नाश ही हो जायगा। प्रमाणका जो काम है वह तो भङ्गोंने कर दिया। अस्ति और नास्ति इन दोनों धर्मोंका एक साथ परिचय करा दिया इस तृतीय भङ्गने तो अब प्रमाणकी आवश्यकता ही क्या रही ? अस्ति नास्तिको एक साथ कहने वाला यह तीसरा भङ्ग बताया गया है ना, उसीसे ही काम चल गया। फिर तो प्रमाणका लोप ही समझना चाहिए। प्रमाण शब्द कहनेकी आवश्यकता ही क्या रही ? तो यों अस्ति नास्ति वाले तृतीय भङ्गको प्रमाण कहना चाहिए, और किसी तरहसे प्रमाण नहीं मानते, उसे नयमें ही सामिल करते, भङ्गमें ही उसकी व्यवस्था बनाते तो जो प्रमाणका जो काम था वह एक भङ्गने ही कर दिया तब फिर प्रमाणके माननेकी कोई आवश्यकता ही न रही।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अस्ति नास्तिको क्रमसे माननेपर तृतीय भङ्गके नाशके प्रसङ्गकी आशंका—अब शङ्काकार इसी विषयमें एक तीसरी आशङ्का रख रहा है। अथवा यदि यह कहा जाय कि अस्ति और नास्ति क्रमसे होते हैं यह बात तृतीय भङ्गमें कही गई है तब तो यह कहना अपने ही वचनके विनाशके लिए हो गया, यह खुद अपना ही शत्रु बन गया, क्योंकि क्रमसे अस्ति होना यह तो पहिला भङ्ग बता दिया है और नास्ति होना, यह दूसरे भङ्गमें बता दिया, और उन्हीं दोनोंको क्रमसे यहाँ कह रहे तो क्रमसे पहिले और दूसरा भङ्ग कहलो, उससे ही तीसरे भङ्ग वाला काम चल गया, फिर तृतीय भङ्गकी जरूरत ही क्या रही ? अब शङ्काकार इसी सम्बन्धमें चौथी आशङ्का रख रहा है।

अथवाऽवक्तव्यमयो वक्तुमशक्यात्समं स चेद्भङ्गः।
पूर्वापरबाधायाः कुतः प्रमाणात्प्रमाणमिह सिद्धयेत् ॥६८५॥

अवक्तव्यमय भङ्गमें प्रमाण बाधाकी आशङ्का—यदि कोई यह कहे कि अस्ति और नास्ति ये दोनों एक साथ कहे नहीं जा सकते, इस कारण ये अवक्तव्य भङ्ग हैं लेकिन ऐसा माननेमें फिर पूर्वापर बाधा आती है कि किस प्रमाणकी सिद्धि बनेगी ? जब एक साथ कुछ कह देना अवक्तव्य हो गया तब फिर प्रमाणकी सिद्धि करने वाला कुछ वचन ही न रहेगा। फिर कोई प्रमाण ही न रहेगा। किसी प्रमाण स्वरूपका संकेत किस तरह किया जायगा ? और लोग कैसे समझ पायेंगे कि यह कहलाता है प्रमाण। तो प्रमाणका जो विषय है समग्र अंशोंका एक साथ परिचय कराना, उसे तो मान लिया अवक्तव्य, तब फिर प्रमाणका परिज्ञान किस विधिसे कराया जायगा ? फिर तो प्रमाणके परिचय कराये जानेका कोई उपाय ही न रहेगा क्योंकि अब प्रमाण भी अवक्तव्य बन गया। प्रमाणका विषय भी अवक्तव्य कह दिया। तो जब सब कुछ अवक्तव्य है तो उसके विषयमें तो मौन रहना चाहिए, अथवा मौन ही क्या, उसका कुछ व्यवहार भी न चल सकेगा। तो अवक्तव्यपनेकी बात भी युक्त नहीं जचती है। अब शङ्काकार ५ वीं आशङ्कामें अपना आशय प्रकट कर रह है।

इदमपि वस्तुमयुक्तं वक्ता नय एव न प्रमाणमिह।
मूलविनाशाय यतोऽवक्तरि किल चेदवाच्यतादोषः ॥ ६८६ ॥

नयको वक्ता व प्रमाणको अवक्ता माननेपर अवाच्यताके प्रसङ्गकी आशङ्का—यह भी कहा जाना अयुक्त है कि प्रतिपादन करने वाला नय ही होता है, प्रमाण नहीं होता है। क्योंकि यदि प्रमाणको अयुक्त मान लिया जाय प्रतिपादनके लिए अर्थात् प्रमाणवता नहीं है, ऐसा यदि स्वीकार कर लिया जाय तो इसमें मूलका

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही विनाश हो जायगा। जब प्रमाणसे प्रतिपादन कर ही नहीं सकते तो स्वरूपका पता कैसे होगा ? कुछ समझमें ही न आयगा। तो प्रमाणको अवक्ता मान लेनेपर अवाच्यताका दोष आयगा तो फिर प्रमाण किसी भी प्रकार समझा ही नहीं जा सकता। बोला ही नहीं जा सकता। प्रमाणके विषयकी बात किसीकी बुद्धिमें आ ही न सकेगी, इस कारण यह कहना भी सङ्गत नहीं जचता कि सातों भङ्गोंमें जो प्रतिपादन किया है तो प्रतिबंध हो जानेसे वह सब नय ही बन गया प्रमाण नहीं, किन्तु वह प्रतिपादन करने वाला नय होता है, प्रमाण नहीं होता। इस प्रकार उक्त चार गाथाओंमें शंकाकारकी ५ आशंकाओंमें तृतीय चतुर्थ भङ्गोंपर आक्षेप किया है। अब उसके समाधान में कहते हैं।

नैवं यतः प्रमाणं भंगध्वंसादभङ्गबोधवपुः।
भङ्गात्मको नय इति यावानिह तदंशधर्मत्वात् ॥ ६८७ ॥

उक्त शङ्काओंके समाधानमें प्रमाणकी अभङ्ग ज्ञानमयताका निर्देश— शंकाकारकी उपर्युक्त शकायें इस कारण समीचीन नहीं हैं कि प्रमाणसे भंग ज्ञानमय माना ही नहीं गया है। प्रमाण अभग ज्ञानमय होता है, भङ्ग ज्ञानमय तो नय हुआ करता है। क्योंकि जितने भी नय विभाग हैं वे सब वस्तुके आंशिक धर्मको ही विषय करते हैं। नय कहते ही उसे हैं कि वस्तुके किसी अंशकी ओर जो ज्ञान ले जाय वह नय कहलाता है। नयमें विवक्षा होती है, दृष्टि होती है और उस दृष्टिसे उस अंशको ही ग्रहण करना है। यों अंश धर्मरूप होनेसे नयभङ्ग ज्ञानमय है, किन्तु प्रमाणभङ्ग ज्ञानमय नहीं है। वह तो अभङ्ग ज्ञायक स्वरूप है। जब प्रमाण अभङ्ग बोधस्वरूप है तब उससे हम क्या निर्णय करें ? इस बातको अगली गाथामें कह रहे हैं।

स यथास्ति च नास्तीति च क्रमेण युगपच्चवानयोर्भङ्गः।
अपि वाऽवक्तव्यमिदं नयो विकल्पानतिक्रमादेव ॥ ६८८ ॥

भङ्गोंकी नयरूपता - ७ भङ्गोंमें जो स्यात् अस्ति नास्तिका भङ्ग बताया गया है उस भङ्गका क्रमसे होना बताया या युगपत होना बताया ? दोनों ही स्थितियोंमें वह भङ्ग ही है, प्रमाणरूप नहीं हो सकता। क्योंकि इतनेमें भी वस्तुका समग्र स्वरूप नहीं आया है, किसी अंशको ही बताया है और दृष्टियोंसे भी पृथक पृथक कायम किया है। एक वस्तुमें अविरुद्ध रूपसे अनेक धर्म जाने जायें, यह पद्धति नयोंमें नहीं बनती है। इन सब भंगोंमें विकल्पका उल्लंघन नहीं है। इसी प्रकार चौथा जो अवक्तव्य रूप अंश है, एक साथ दोनों धर्म नहीं कहे जा सकते, इस कारण अवक्तव्य है, ऐसा अवक्तव्यपना भी नय है, किन्तु प्रमाण नहीं है। यहाँ भी अंशरूप ज्ञान है और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विकल्पका उल्लंघन नहीं है । शंकाकारने उक्त आशंकाओंमें मुख्य आक्षेप दो भंगोंपर किया है । अस्ति नास्ति इन दोनोंको एक बारमें कहा जानेपर नय नहीं, किंतु प्रमाण होना चाहिए । क्रमसे कहा जाय तो अलग अलग दो भङ्ग पहिले बताये ही गए हैं । एक साथ कहा जाय तो वह प्रमाण बन जायगा । इस तरह तृतीय भङ्गपर आक्षेप किया था । सो उस सम्बन्धमें बात यह है कि स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति ये दोनों यदि क्रमसे कहे जाते हैं तो पहिले और दूसरे भङ्गमें इनका प्रवेश होगा । यदि इन दोनोंको क्रमसे और एक साथ प्रयोग किया जाता तो तीसरा भङ्ग होता जिसका नाम है—स्याद् अस्ति नास्ति । यदि इन दोनोंका अक्रमसे एक साथ प्रयोग किया जाता है तो अवक्तव्य नामका चौथा भङ्ग बनता है । तो ये सब नयके भेद हैं, क्योंकि वे सब अंशात्मक हैं, ये भङ्ग प्रमाणरूप नहीं कहे जा सकते ये वस्तुके सर्वस्वके ग्राहक नहीं हैं, इसी बातको अगली गाथामें स्पष्ट कर रहे हैं ।

तत्रास्ति च नास्ति समं भंगस्यास्यैकधर्मता नियमात् ।
न पुनः प्रमाणमिव किल विरुद्धधर्मद्वयाधिरूढत्वम् ॥ ६८९ ॥

अस्तिनास्तिरूप तृतीय भङ्गकी नयात्मकताकी युक्तिपूर्वक सिद्धि – उन भङ्गोंमें जो स्याद अस्ति नास्ति भङ्ग बताये गए हैं तो ये जब एक साथ बोले हुए होते हैं तो ये एक ही धर्म वाले भङ्ग हैं, उसे प्रमाणके समान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि धर्मोंके समावेशकी पद्धति नय और प्रमाणमें भिन्न भिन्न है । प्रमाण एक ही समयमें दो विरोधी धर्मोंका मैत्री भावसे प्रतिपादन करता है । तो जिस तरह प्रमाण विरोधी अनेक धर्मोंको एक वस्तुमें एक साथ प्रतिपादन करता है उस तरह कोई सा भी भङ्ग विरोधी धर्मका एक वस्तुमें प्रतिपादन नहीं करता, क्योंकि नयोंकी दृष्टिमें अन्यको अवकाश नहीं दिया गया है । यह तो ज्ञात के अभिप्राय की बात है कि वह किसी भी नयका प्रयोग करके शेष नयोंकी अपेक्षा रखता है । तो प्रमाणने एक ही समयमें दो विरोधी धर्मोंका मैत्रीभावसे प्रतिपादन किया है, परन्तु स्याद अस्ति नास्ति कहकर भी इस भङ्गमें दो विरोधी धर्मोंका मैत्रीभावसे प्रतिपादन नहीं है, किंतु पहिले और दूसरे इन दो विरोधी धर्मोंका अविरोधपना है । उस भङ्गमें भी दो विरोधी धर्म रूपसे वे समझे जा रहे हैं, अतएव ऐसे भङ्ग ज्ञानांशरूप ही हैं ।

अयमर्थश्चार्थांशादथ च विवक्षावशात्तदंशत्वम् ।
युगपदिदं कथ्यमानं क्रमाज्ज्ञेयं तथापि तत्स यथा ॥६९०॥

विवक्षावश कथित वचनकी नयरूपताका निर्णय —उक्त गाथाओंमें जो आशङ्काओंका समाधान दिया गया है उसका आशय यह है कि किसी प्रयोजनसे या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विवक्षासे एक साथ और क्रमसे कहते हुए जो भी भङ्ग हैं वे सब अंशरूप हैं इस कारण वे सब नय हैं। ७ भङ्गोंमें जिस किसी भी भङ्गका प्रतिपादन है वह किसी विवक्षासे है, सर्वरूपसे नहीं है। तो जहाँ विवक्षासे प्रतिपादन है तो वहाँ एक ही अंशका प्रतिपादन है अस्ति नास्ति दोनोंको एक साथ कहनेपर भी चूंकि वहाँ भी विवक्षा भेद पड़ा हुआ है और विवक्षा भेद वाली बात एक साथ कहनेमें अशक्य है इस कारण एक अवक्तव्य भङ्ग बन गया है। सो वह भङ्ग भी नय ही है। वस्तु सर्वथा अवक्तव्य नहीं है और अवक्तव्य नयकी विवक्षा जो भिन्न-भिन्न दो हैं उनका समावेश किया है। कहीं मैत्री भावसे विरोधी धर्मोंका एक वस्तुके बतानेका आशय उस भङ्गमें नहीं है, इस कारण जैसे स्याद नास्ति एक भङ्ग है और नयरूप है उसी प्रकार स्याद नास्ति एक भङ्ग है और नयरूप है। इस ही तरह स्याद अस्ति नास्ति ये जो क्रमशः कथन हैं वे भी भङ्गरूप हैं और अवक्तव्य हैं, ऐसा कथन भी भङ्गरूप है, यह प्रमाण नहीं कहा जा सकता।

अस्तिस्वरूपसिद्धयेनास्ति च पररूपसिद्धयभावाच्च।
अपरस्योभयरूपादितस्ततः कथितमस्ति नास्तीति ॥ ६६१ ॥

सप्तभङ्गीके प्रथम तीन भङ्गोंका सयुक्ति प्रतिपादन – इन सब भङ्गोंकी मुख्यतया जाँच कीजिए ! वस्तुमें निजरूपकी अपेक्षासे, स्वरूपसिद्धिकी दृष्टिसे स्याद अस्ति है यह प्रथम भङ्ग बनता है और उस वस्तुमें पररूप सिद्धिका अभाव है अर्थात् पररूपकी अपेक्षासे स्याद नास्ति, यह दूसरा भङ्ग बनता है। तथा स्वरूपकी अपेक्षासे अस्तित्व पररूपकी अपेक्षासे नास्तित्व, ऐसा तृतीय भङ्ग बताया गया है। तो वहाँ विरोधी दो विवक्षाओंका आशय ग्रहण किया गया है। यों उभयरूपकी विवक्षासे अस्ति नास्तिरूप तीसरा भङ्ग बताया गया है। तो इन तीनोंमें अपेक्षा भिन्न-भिन्न है। पहिले भङ्गमें स्वरूपकी अपेक्षा है, दूसरे भङ्गमें पररूपकी अपेक्षा है, तीसरे भंगमें स्वपररूपकी अपेक्षा है। इस तरह जब इन दो भङ्गोंमें अपेक्षा भिन्न-भिन्न है तो इसे भङ्ग ही कहा जायगा। प्रमाणका स्वरूप तो इन भङ्गोंसे जुदा ही है। अब इसी बात को अगली गाथामें बता रहे हैं। प्रमाणका स्वरूप इन भङ्गोंसे जुदा किस तरह है ?

उक्तं प्रमाणदर्शनमस्ति स योयं हि नास्तिमानर्थः।
भवतीदमुदाहरणं न कथञ्चिद्वै प्रमाणतोऽन्यत्र ॥६६२॥

नयोंसे विलक्षण प्रमाणका दर्शन—प्रमाणका स्वरूप नयोंसे जुदा ही है और वह इस प्रकार है जैसा कि इस उदाहरणमें स्पष्ट प्रतीत हो जायगा। उसका उदाहरण है कि जो पदार्थ अस्तिरूप से वही पदार्थ नास्ति रूप है। तृतीय भङ्गमें स्व-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूपसे अस्तित्व पररूपसे नास्तित्व क्रमसे कहा गया है, किन्तु प्रमाणमें दोनों ही धर्मों का कथन एक ही समयमें प्रत्यभिज्ञानकी पद्धतिसे कहा जाता है। अस्तिरूप भङ्गमें एक दृष्टि थी नास्तिरूप भङ्गमें दूसरी भिन्न दृष्टि थी, किन्तु जहाँ यह ज्ञात हो कि यही पदार्थ अस्तिरूप है वही तो नास्तिरूप है। तो प्रमाणमें दोनों धर्मोंका प्रतिपादन एक साथ प्रत्यभिज्ञानकी पद्धतिसे हो गया है। जो अस्तिरूप है वही नास्तिरूप है यह बात प्रमाणमें ही घटित होती है। प्रमाणको छोड़कर किसी भी नयमें घटित नहीं हो सकती। नय भी विवेचन नही कर सकता। तो जब नयोंने अपना प्रयोजन और विवक्षा भिन्न ही रखा तो नय प्रमाणके स्वरूपसे जुदा ही है दो नयोंका प्रयोग भी नय ही है. किन्तु प्रमाण नहीं है।

तदभिज्ञानं हि यथा वक्तुमशक्यात् तमंनयस्य यतः ।
अपि तुर्यो नयभङ्गस्तत्त्वावक्तव्यतां श्रितस्तस्मात् ॥६६३॥

अवक्तव्य भंगकी नयरूपता—इस गाथामें यह बताया गया है कि सप्तभङ्गीमें जो चौथा अवक्तव्य नामका भङ्ग है वह भी अंशात्मक है। नय एक समय दो धर्मोंका प्रतिपादन नहीं कर सकता है, इस कारण जब दो धर्मोंके एक साथ कहने की विवक्षा होती है उस समय अवक्तव्य नामका चौथा भङ्ग निष्पन्न होता है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों दृष्टियोंसे जो भिन्न-भिन्न धर्म जाने गए हैं उनको एक साथ कहनेकी जब इच्छा हो जाती है तो वहां परस्पर विरुद्ध धर्मोंको कहनेका तो प्रयास किया जा रहा है दृष्टियाँ भी भिन्न-भिन्न रूपसे दो ही लगाई जा रही हैं और एक साथ कहनेका प्रयास है, ऐसी दृष्टिमें वहाँ अवक्तव्यता बनती है। अवक्तव्य उसे कहते हैं जो कहा न जा सके! एक समयमें एक ही धर्मका विवेचन होगा अनेकका नहीं। अवक्तव्य है. ऐसा कहकर अवक्तव्यका रूप एक अंशका ही ग्रहण किया गया है इस कारण अवक्तव्य नामका चौथा भङ्ग भी नय है, प्रमाण इससे भिन्न स्वरूप वाला है। प्रमाणकी मुख्य विशेषता यह है कि वह एक वस्तु उन विरोधी अनेक धर्मोंका अविरोध रूपसे ग्रहण कर लेता है अथवा वस्तुके भिन्न-भिन्न धर्मोंका विकल्प न करके उस समग्र वस्तुको ग्रहण कर लेता है सो ऐसा प्रमाण नयोंसे भिन्न ही है।

न पुनर्वक्तुमशक्यं युगवद्धर्मद्वयं प्रमाणस्य ।
क्रमवर्ती केवलमिह नयः प्रमाणं न तद्वदिह यस्मात् ॥६६४॥

सब धर्मोंका समकाल प्रतिपादक होनेसे प्रमाणकी उक्त भङ्गोंसे विलक्षणता—नयमें ही यह प्रतिबंध है कि वह दो या अधिक धर्मोंका प्रतिपादन एक साथ नहीं कर सकता है. परन्तु प्रमाणके विषयभूत अनेक धर्म एकसाथ कहे जा सकते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। नयके समान यह बात न बनेगी कि अनेक धर्मोंका प्रतिपादन प्रमाण न कर सके, क्रमवर्ती तो केवल नय ही हुआ करता है। अर्थात् नय क्रमसे जानेगा। जिस नयका जो विषय है वह उस विषयको जानेगा, फिर दूसरी दृष्टि विवक्षा करके दूसरे अंशके ज्ञानका प्रारम्भ हो तो वह उसके बाद जानेगा, तो नयोंमें क्रमवर्तिता है, पर प्रमाण में क्रमवर्तिता नहीं है अर्थात् प्रमाण एक साथ वस्तुके सर्वस्वको जान लेता है। ७ भङ्गोंमें सभी भंग अपने-अपने एक-एक विषयका प्रतिपादन करते हैं। उन भङ्गों के समान प्रमाण नहीं है और जिससे यह शङ्का रखी जा सके प्रमाणका स्वरूप नयोंसे कुछ जुदा नहीं मालूम होता, प्रथम भङ्गमें स्याद अस्तिका निरूपण है, वह एक अंशका ही बोध है। प्रमाण स्यात् अस्ति एव इतने ही अंशका ग्रहण नहीं करता किन्तु सर्वस्व ग्रहण करता है, इस ही तरह नास्ति अथवा अस्ति नास्ति आदिक धर्मों की भाँति एक अंशको प्रमाण ग्रहण नहीं करता, याने यह क्रमसे दो धर्मोंका प्रतिपादन करने वाले तीसरे भङ्गकी तरह नहीं है। अथवा केवल अवक्तव्यताके अंशको ही प्रकट करने वाला प्रमाण नहीं है, किन्तु वह तो अनेक धर्मोंका एक कालमें ही प्रतिपादन करता है, इस कारण यह निर्णय रखना चाहिए कि प्रमाण अनेक नयोंके योगसे भी जुदी चीज है। शङ्काकारका आशय यह था कि केवल एक नय तो नय कहलाया, पर अनेक नयोंका जहाँ योग कर दिया जाय तो वह प्रमाण हो जायगा। तो नयोंका योग ही प्रमाण कहलाया। प्रमाण कुछ अगल चीज नहीं है, सो इस शङ्काका यहां तक निराकरण कर दिया गया कि अनेक नयोंके योग भी प्रमाणसे जुदे हैं, वे प्रमाण नहीं हो सकते।

यत्किल पुनः प्रमाणं वक्तुमलं वस्तुजातमिह यावत्।
सदसदनेकैकमथो नित्यानित्यादिकं च युगपदिति ॥६९५॥

प्रमाणकी वस्तुमात्रके प्रतिपादनकी तथा अनेक धर्मोंके युगपत् प्रतिपादनकी क्षमता — प्रमाणके प्रसंगमें शङ्का समाधान पूर्वक जो कुछ विवरण किया गया है उस सब विवरणके पश्चात् अब फलित निर्णयकी बात इस गाथामें कह रहे हैं। जो प्रमाण होता है वह निश्चयसे वस्तु मात्रका प्रतिपादन करनेमें समर्थ है अर्थात् वह वस्तुके सर्वस्वका परिचय करने वाला है। अथवा उसे इसरूपमें भी समझ सकते हैं कि प्रमाण सत् असत्, एक अनेक नित्य अनित्य आदिक अनेक धर्मोंका एक साथ प्रतिपादन करनेमें समर्थ है। प्रमाणकी इस पद्धतिके लक्षणमें इस बातपर मुख्यतया ध्यान रखना चाहिए कि प्रमाण एक वस्तुमें अविरूद्ध रूपसे परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मोंको ग्रहण करता है। कैसी प्रमाणकी अद्भुत महिमा है कि जो धर्म अपने अपने स्वरूपके कारण एक दूसरेसे भिन्न है, विरुद्ध है प्रतिपक्ष है फिर भी वे सब ही वस्तुमें रहते हैं और अविरोध रूपसे रहते हैं अर्थात् एक धर्म दूसरेको हटाकर नहीं रह रहा, किन्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सब एक साथ रह रहे हैं. इसी तरहका प्रकाश प्रमाण देता है । तो प्रमाण ज्ञान वस्तुके सर्वस्वको ग्रहण कराता है, नय वस्तुके सर्वस्वको ग्रहण नहीं कराता है और, कदाचित् अनेक नयोंका योग भी करदे तो भी वहाँ यह विशेषता नहीं आती कि अविरोध रूपसे उन सबका समावेश होता हो। कितने ही नयोंका योग कर दिया जाय फिर भी नय जो परस्पर विरुद्ध धर्मका ज्ञान कर रहा था तो योग होनेपर भी विरुद्ध धर्म ही उनका विषय रहता है । तो यों नयोंसे प्रमाणका स्वरूप भिन्न है । प्रमाण वस्तुके सर्वस्वको ग्रहण करने वाला है और नय वस्तुके अंशको ही ग्रहण करता है ।

अथ तद्द्विधा प्रमाणं ज्ञानं प्रत्यक्षमथ परोक्षञ्च ।
असहायं प्रत्यक्षं भवति परोक्षं सहायसापेक्षम् ॥६९६॥

प्रमाणके भेद—प्रमाणके स्वरूपपर पर्याप्त प्रकाश डालनेके बाद अब प्रमाणके भेदका वर्णन चल रहा है । प्रमाण दो प्रकारके होते हैं प्रमाणका अर्थ यहाँ ज्ञान लेना है और सर्वत्र ज्ञान ही प्रमाण होता है तो उस प्रमाणरूप ज्ञानके यहाँ भेद किए जा रहे हैं । यद्यपि नय भी एक ज्ञान है, किन्तु नयरूप ज्ञानकी चर्चा पहिले की जा चुकी है । अब यहाँ प्रमाण रूप ज्ञानके भेद बताये जा रहे हैं । प्रमाण सदा ज्ञान रूप होता है, अज्ञान रूप नहीं होता, इस बातकी कुछ चर्चा इसी ग्रन्थमें कुछ आगे की गई है । विस्तार पूर्वक यह मर्म वहाँसे जान लिया जायगा, पर संक्षेपमें यहाँ यह समझना है कि जहां भी लोग प्रमाणका व्यवहार करते हैं वहाँ ज्ञानसे ही उसका भाव हो जाता है । यदि कोई कभी लिखित दस्तावेज सामने रखदे कि देखो ! यह प्रमाण है, तो कहीं कागज और स्याही प्रमाण नहीं कहलाये, किन्तु उस सबको पढ़कर जो भाव भासना हुई है, जो ज्ञान बना है वह ज्ञान प्रमाण है । तो इस प्रकार प्रमाण ज्ञानरूप ही होता है । उस प्रमाण रूप ज्ञानके यहाँ भेद बताये जा रहे हैं । प्रमाण ज्ञानके दो भेद हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष । जो ज्ञान असहाय होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है और जो ज्ञान सहाय सापेक्ष होता है वह परोक्ष कहलाता है असहायका अर्थ स्वसहाय अर्थात् किसी दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करता । आत्म शक्तिसे ही जो ज्ञान प्रकट हो जाता है, जिसकी निस्पत्तिमें इन्द्रिय, मन, प्रकाश आदिककी सहायता नहीं ली जानी पड़ती है वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है और जो ज्ञान इंद्रिय आदिककी सहायतासे होता है उसे परोक्षज्ञान कहते हैं । तो ज्ञान ऐसे नाना प्रकारके होते हैं, क्योंकि विषय भी नाना हैं. पद्धतियाँ नाना हैं । उन सब ज्ञानोंको संक्षिप्त प्रकारमें बाँटा जाय तो या तो वह प्रत्यक्ष होगा अथवा परोक्ष होगा ।

प्रत्यक्षं द्विविधं तत्सकल प्रत्यक्षमक्षयं ज्ञानम् ।
क्षायोपशमिकमपरं देशप्रत्यक्षमक्षयं क्षयि च ॥६९७॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्यक्ष प्रमाणके भेद—अब इस गाथामें प्रत्यक्ष प्रमाणके प्रकार बताये जा रहे हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकारका होता है एक सकल प्रत्यक्ष और दूसरा विकल प्रत्यक्ष। सकल प्रत्यक्ष तो अविनाशी ज्ञान है और विकल प्रत्यक्ष क्षायोपशमिक है। कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न नहीं होता, तथा विनाशीक है। सकल प्रत्यक्ष ज्ञानावरणका क्षय होनेसे प्रकट होता है और प्रकट होनेसे सकल प्रत्यक्षज्ञान मिटकर अन्य किसी प्रकार का ज्ञान बन जाय, देश प्रत्यक्ष हो जाय अथवा परोक्ष हो जाय ऐसा तीन कालमें भी सम्भव नहीं, अर्थात् ऐसा न किन्हीं केवल ज्ञानियोंके हुआ है न कभी होगा। परिणतियां पदार्थमें प्रति समय नवीन नवीन होती हैं, ऐसा पदार्थका स्वभाव ही है कि वह प्रति समय परिणमनशील रहा करता है और इस वास्तविकताके कारण सकल प्रत्यक्ष ज्ञानी अरहंत और सिद्ध देव निरन्तर केवलज्ञान रूपसे परिणमन करते रहते हैं। सूक्ष्म दृष्टिसे वह प्रतिसमयका केवल ज्ञान पर्याय न्यारा है, अपूर्व अपूर्व है। फिर भी विषय वही है, पद्धति वही है, स्वरूप वही है, इस कारण उन्हें अविनाशी कहा गया है। केवलज्ञान होनेके बाद फिर केवलज्ञान कभी भी नष्ट न हो सकेगा, इस कारण सकल प्रत्यक्ष अक्षयज्ञान है और विकल प्रत्यक्ष क्षायोपशमिक ज्ञानमें उत्पन्न होता है, नयसे नहीं होता, इस कारण वह विनाशीक है, नियमसे वह मिट जायगा। किसीके केवलज्ञान होनेपर मिटता है तो किसीके पतन अवस्थाके लिए मिट जाता है।

अयमर्थो यज्ज्ञानं समस्तकर्मक्षयोद्भवं साक्षात्।
प्रत्यक्षं क्षायिकमिदमक्षातीतं सुखं तदक्षमिकम् ॥ ६६८ ॥

सकल प्रत्यक्ष स्वरूप ही प्रमाणका स्वरूप है—सकल प्रत्यक्ष ज्ञानकी विशेषता जाननेके लिए इस गाथामें सकल प्रत्यक्षका स्वरूप बताया गया है। सकल प्रत्यक्ष ज्ञान समस्त ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है। और वह साक्षात् आत्मसापेक्ष होता है। किसी निमित्त आदिक पर पदार्थके योग बिना किसी एक आत्मसामर्थ्यसे सहज ही सर्वविश्व ज्ञानमें झलकता है। इससे वह आत्म मात्र सापेक्ष कहलाता है। ऐसा यह सकल प्रत्यक्ष ज्ञान क्षायिक है। ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है और इन्द्रियातीत है। किसी भी इंद्रिय की सहायतासे अथवा अपेक्षासे प्रकट नहीं होता और न इस ज्ञानमें इंद्रियके विषयरूप से विषय प्रतिविम्बित होता है, किन्तु समग्र वस्तु बिना विकल्पके स्पष्ट प्रतिविम्बित होता है किन्तु समग्र वस्तु बिना विकल्पके स्पष्ट प्रतिविम्बत हो जाता है। यह सकल प्रत्यक्ष ज्ञान आत्मीय सुख स्वरूप है। यह स्वयं आनन्दमय है। जहाँ कोई रागद्वेष नहीं है और किसी भी प्रकारका ज्ञानावरण नहीं है। जितने भी सत् हैं लोकमें वे समस्त अनन्तानन्त सत् सहज ही जहां ज्ञानमें प्रतिभासित होते हैं ऐसा ज्ञान आनन्दमय ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहता हैं, वहाँ आकुलताका कोई अवकाश नहीं है। इस कारण यह सकल प्रत्यक्षज्ञान आत्मसुख स्वरूप है, विशुद्ध आनन्दमय है और यह सकल प्रत्यक्षज्ञान अविनश्वर है। आत्माका स्वभाव ज्ञान है और ज्ञानस्वभावके कारण यह विशुद्ध आत्मा निरन्तर जानता रहता है, जाननेका इसका स्वभाव है। अब यह पूर्ण निरावरण है, इसको किसी परकी अपेक्षा अब नहीं रही। आवरण सहित स्थितिमें ज्ञानके इंद्रियादिककी अपेक्षा हो जाती थी। अब निरावरण दशामें इंद्रिय और मनकी भी अपेक्षा नहीं रहता, फिर ज्ञान ऐसे किस तरह नष्ट हो सकेगा ? इस कारण यह सकल प्रत्यक्ष ज्ञान आत्मीय आनन्दस्वरूप है और अविनाशी है।

देशपूत्यक्षमिहाप्यवधिमनः पर्ययं च यज्ज्ञानम् ।
देशं नोइन्द्रियमन उत्थात् पूत्यक्षमितरनिरपेक्षात् ॥ ६९९ ॥

देश प्रत्यक्ष प्रमाणका स्वरूप— प्रमाणके दो भेद बताये गए हैं—एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। और, परोक्षके भी दो भेद कहे गए हैं। १ देश प्रत्यक्ष और २ सकल प्रत्यक्ष। जिनमेंसे सकल प्रत्यक्षका स्वरूप कह दिया गया है। अब इस गाथामें देश प्रत्यक्षका स्वरूप कह रहे हैं। देश प्रत्यक्ष अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान ये दो ज्ञान कहलाते हैं। एक देश स्पष्टतया जानते हैं इस कारण इसे देश प्रत्यक्ष कहते हैं। इन दोनों ज्ञानोंका विषय मर्यादित है, अल्प है तो अपने मर्यादित विषयको जानता है इस कारण यह देशज्ञान करने वाला है और जानता है इन्द्रियमनकी सहायताके बिना इस कारण यह प्रत्यक्ष कहलाता है। यही बात गाथाकारके इन शब्दोंसे ध्वनित होती है इस पद्धतिसे कि ये दोनों ज्ञान नोइंद्रिय अथवा मनसे उत्पन्न होते हैं, इस कारण देश कहलाता है और अन्य इंद्रियकी अपेक्षा नहीं रखता है इस कारण प्रत्यक्ष कहलाता है। यहां यह बात कितनी अपूर्व कही है कि अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान भी मनसे उत्पन्न होता है। सिद्धान्तोंमें प्रायः इस तरह वर्णन आता है कि अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान इंद्रिय और मनसे उत्पन्न नहीं होते, लेकिन यहाँ बताया गया है मनसे तो उत्पन्न होते। पर इंद्रियसे नहीं यदि सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय तो अवधिज्ञानके सम्बंधमें यहभी वर्णन आया है कि अवधिसे ज्ञानके शरीर में भीतर हृदय नाभि, मस्तक आदिक साधनोंसे कोई चिन्ह विशेष प्रकट होते हैं जिनके आश्रयसे अवधिज्ञानकी निस्पत्ति होती है, तो वह चिन्ह इन्द्रिय नहीं कहलाता। यह तो अन्तरंगकी साधना है तब इसे अन्तःकरण अथवा नोइन्द्रिय भी किसी प्रकार कह सकते हैं, क्योंकि मनको अव्यवस्थित बताया है। चलित भी कहा गया है। दूसरी बात यह है कि अवधिज्ञानका जो उपयोग करता है वह पहिले मनसे इस प्रकारकी प्रेरणा लेता है कि यह समझूं किस तरह है। जो किसीने पूछा एक मनसे पहिले चिन्तन करता है अथवा अपने आप ही मनसे उसका विचार करता है, पश्चात् ऐसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपयोगपद्धतिसे चल देता है कि वहाँ अवधि दर्शनपूर्वक अवधि ज्ञान हो जाता है। तो चूंकि अवधिज्ञानकी निष्पत्तिसे पहिले मनकी प्रेरणा मिले, अतः परम्परासे यह कहा जा सकता है कि मनसे सम्बन्ध रहनेके कारण अवधिज्ञान देश प्रत्यक्ष है, मनःपर्यय ज्ञानके सम्बन्धमें यह तो बताया ही गया है कि दूसरेके मनमें तिष्ठे हुए पदार्थका ज्ञान करना तो दूसरेके मनमें नहीं होता। स्वतन्त्रतया कुछ भी पदार्थको मनःपर्यय ज्ञानी जाने सो इसका विषय नहीं है। दूसरेके मनमें तिष्ठे हुए विकल्पको यह मनःपर्ययज्ञानी जानता है। तो उस विषयके परिज्ञानमें मनका सम्बन्ध तो रहा ही अथवा सिद्धान्त शास्त्रमें यह भी बताया गया है कि ऋजुमती मनःपर्ययज्ञान इंद्रिय नोइंद्रियकी सहायताये होता है परन्तु विपुलमती मनःपर्यय और अवधिज्ञान ये दोनों ही इन्द्रिय और मनकी सहायतासे नहीं होते हैं। इस सम्बन्धमें गोमटसारमें यह गाथा भी आई है—

"इंदियणोइंदियजोगादिं पेक्खित्तु उजुमदी होदि।
णिरवेक्खिय विउलमदी ओहिं वा होदि णियमेण।"

इस गाथासे यह सिद्ध होता है कि ऋजुमती मनःपर्ययज्ञान ईहा मतिज्ञानपूर्वक होता है, इस तरहसे मनःपर्ययज्ञानको इंद्रिय मन सापेक्ष समझा गया है और इस गाथा में उस इंद्रियकी सापेक्षता नहीं कही गई है। केवल मनकी सापेक्षता कही गई है। तो यह बाह्य अपेक्षासे समझना चाहिए अथवा जैसे शरीरमें अन्य अनेक स्थानोंपर कुछ चिन्ह विशेष प्रकट होते हैं उनके आलम्बनसे अवधिज्ञान निष्पन्न होता है तो इस तरह सापेक्षता समझना चाहिये। तात्पर्य यह है कि केवलज्ञानकी तरह कुछ भी अपेक्षा न रखे और अवधि मनःपर्यय हो जाय, ऐसा नहीं है।

आभिनिबोधिकबोधो विषयविषयिसन्निकर्षजस्तस्मात्।
भवति परोक्षं नियमादपि च मतिपुरस्सरं श्रुतं ज्ञानम्। ७००।

आभिनिबोधिक व श्रुत इन दोनों परोक्ष ज्ञानोंका स्वरूप— इस गाथा में परोक्षज्ञानका स्वरूप कहा गया है। परोक्षज्ञान दो होते हैं मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मतिज्ञानका दूसरा नाम है आभिनिबोधित ज्ञान। आभिनिबोधित शब्दमें तीन शब्द आये हुए हैं- आभि नि और बोध जिनका अर्थ होता है कि अभिमुख और नियमित पदार्थोंका बोध करना आभिनिबोधित ज्ञान है। मतिज्ञान अभिमुख और नियमित पदार्थका बोध करता है और वह है विषय और इन्द्रियके सम्बन्धसे होने वाला। इस कारण मतिज्ञान परोक्ष ज्ञान ही है। अभिमुख उसे कहते हैं जो स्थूल वर्तमान योग्य क्षेत्रमें ठहरे हुए पदार्थ हैं। जैसे नेत्र द्वारा रूप रंगको जानते हैं तो वह सामने हो जिसे चक्षु देखते हैं, यह अभिमुखता हुई और नियत उसे कहते हैं कि जो विषय जिस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इद्रियका विषय हो वही कहलाता है नियमित पदार्थ। इन्द्रिय द्वारा जो ज्ञान होता है वह स्थूल और योग्य क्षेत्रमें टहरे हुए वर्तमानका बोध होता है, सूक्ष्मका नहीं, भूत भविष्यका नहीं। अयोग्य क्षेत्रमें ठहरे हुएका नहीं अर्थात् जितने निकट या जितनी दूर जिसके जिस ओर ठहरे हुए पदार्थका बोध मतिज्ञान द्वारा होता है उसका ही बोध मतिज्ञान द्वारा होता है उसका ही बोध किया जा सकता है। यह तो हुआ अभिमुख का भावार्थ, नियमितका भावार्थ है कि प्रत्येक इंद्रियका विषय नियत है। जेसे स्पर्शन इंद्रियके द्वारा स्पर्शको ही जाना जा सकता है चिकना, रूखा, ठण्डा गर्म आदिक स्पर्श ही छूकर समझा जाता है। रसना इन्द्रियके द्वारा रस ही जाना जा सकता है। खट्टा, मीठा, तीखा, रसायला आदिक रस ही समझा जा सकता है। तो रसनाका नियत विषय है रस, घ्राण इद्रियका नियत विषय है गंध घ्राण इद्रिय द्वारा सुगंध अथवा दुर्गन्धका बोध किया जाता है। चक्षु इन्द्रियके द्वारा रूप ही जाना जाता है। काला, पीला आदिक रूप चक्षुइंद्रियसे समझा जा सकता है और शब्दका ज्ञान कर्णेन्द्रियसे ही होता है। यों इन्द्रियका विषय नियत हैं यों अभिमुख नियमित पदार्थको जो जानता है, जिस साधनसे इन पदार्थोंका परिज्ञान होता है वह सब आभिनिबोधिक ज्ञान कहलाता है। श्रुतज्ञान आभिनिबोधित ज्ञान पूर्वक होता है इस कारणसे वह भी परोक्षज्ञान है। यों मतिज्ञान व श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान परोक्षज्ञान कहलाते हैं।

छद्मस्थावस्थायामावरणेन्द्रियसहायसापेक्षम्।
यावज्ज्ञानचतुष्टयमर्थात् सर्वं परोक्षमिववाच्यम् ॥७०१॥

चारों ज्ञानोंका परोक्षवत् निर्णय—ज्ञान ५ प्रकारके बताये गए हैं और उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तो है परोक्षज्ञान अवधिज्ञान, मन: पर्ययज्ञान देश प्रत्यक्ष और केवलज्ञान है सकल प्रत्यक्ष परन्तु सूक्ष्म और विशुद्ध दृष्टिसे विचारा जाय तो छद्मस्थ अवस्थामें जितना भी ज्ञान हो सकता है वह सब परोक्षज्ञानकी ही तरह है। मतिज्ञान व श्रुतज्ञान तो परोक्षज्ञान हैं ही। अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान भी आवरणकी अपेक्षा रखते हैं। अवधिज्ञानावरण और मन:पर्यय ज्ञानावरणके क्षयोपशमके साथ हुआ करता है। तथा मतिश्रुत तो इन्द्रियकी और मनकी सहायता लेता है और अवधिज्ञान मन:पर्यय ज्ञानमें भी परम्परासे या किन्हू विशेषसे किसी भी रूपमें मनकी अपेक्षासे आ जाती है। इस तरहसे चारों ही ज्ञान परोक्षज्ञानके समान ही समझना चाहिए, इस विषयमें विशुद्ध दृष्टिसे विचार करनेपर इतना तो विदित हो ही जाता कि जो बिल्कुल स्वसहाय हो, जहाँ किसी भी प्रकारके परका आश्रय न हो, अथवा कोई बाह्य साधन न लगे, वह ही ज्ञान वास्तवमें प्रत्यक्ष कहलाता है और ऐसी स्पष्ट प्रत्यक्षता केवलज्ञानमें प्रतीत होती है। उससे निवल होनेके कारण चारों ही ज्ञान वस्तुत: परोक्षज्ञानकी तरह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही कहना चाहिए।

अवधिमनःपर्ययविद्द्वैतं प्रत्यक्षमेकदेशत्वात्।
केवलमिदमुपचारादथ च विवक्षावशान्न चान्वर्थात्॥७०२॥

अवधिज्ञान व मन:पर्ययज्ञानकी उपचारसे प्रत्यक्षता—अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान ये दो ज्ञान एक देश प्रत्यक्ष माने गए हैं। सो यहाँ सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय तो इसमें जो प्रत्यक्षता बतायी गई है वह विवक्षावश केवल उपचारसे घटित होती है, अथवा परमार्थतः इसे प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता। यद्यपि मतिश्रुत ज्ञानकी अपेक्षा इसमें अधिकाधिक स्पष्टता है क्योंकि यह इन्द्रिय प्रत्यक्षसे नहीं जाना जाता, किन्तु आत्मशक्तिसे जाना जाता है। भले ही इसमें परम्परा मनकी अपेक्षा हुई है पर जब यह ज्ञान अपने कालमें अपना काम करता है उस समय मनकी अपेक्षा नहीं रहती, इस कारण मति श्रुत ज्ञानकी अपेक्षा इसमें स्पष्टता विशेष है, फिर भी अवधिज्ञान और मन: पर्ययज्ञान इन दोनोंमें बहुत सी पराधीनताएं हैं जैसे तद्विषयक ज्ञानावरणका क्षयोपशम होना मनसे पूर्वकालमें चिन्तन बना दूसरेके मनका आधार से विषयको जानना, अपने ही शरीरमें जो अंत: शंखादिकके आकार चिन्ह प्रकट होते हैं उन चिन्होंके माध्यमसे जानना ऐसी कुछ बातें अवधिज्ञानसे होती हैं। कुछ मन: पर्ययज्ञानसे होती हैं, इतनी अपेक्षाके कारण इन्हें परमार्थतः प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता।

तत्रोपचारहेतुर्यथा मतिज्ञानमक्षजं नियमात्।
अथ तत्पूर्वं श्रुतमपि न तथावधि चित्तपर्ययं ज्ञानम्॥७०३॥

अवधिज्ञान व मन:पर्ययज्ञानकी उपचारसे प्रत्यक्षताके कथनका कारण यहाँ कोई जिज्ञासु ऐसी आशङ्का कर सकता है कि जब अवधिज्ञान और मन: पर्यय ज्ञानमें बहुत सी अपेक्षायें अब भी लगी हुई हैं तब इन्हें उपचारसे भी प्रत्यक्ष कहनेकी आवश्यकता क्यों हुई है? उसका समाधान इस गाथामें दिया गया है। अवधिज्ञान मन:पर्ययज्ञान उपचारसे प्रत्यक्ष माने गए हैं, तो इस उपचारका कारण यह है कि जिस तरह मतिज्ञान नियमसे इंद्रियजन्य ही ज्ञान है और श्रुतज्ञान भी चूंकि मतिज्ञान पूर्वक ही होता अतएव वह भी इंद्रियजन्य ज्ञान है। तो जैसे मतिश्रुत इंद्रियज्ञान हैं उसी प्रकार अवधि और मन:पर्ययज्ञान इन्द्रियजन्य नहीं हैं, यही कारण है कि अवधि और मन:पर्यय ज्ञानको प्रत्यक्ष कहना पड़ा, पर यह प्रत्यक्षता उपचारसे यों कही जाती इंद्रियकी अपेक्षा तो इन दोनों ज्ञानोंमें नहीं है, किन्तु अन्य अपेक्षा फिर भी इन ज्ञानों में रहा करती है, इस कारण यह प्रत्यक्ष तो है और एक देश प्रत्यक्ष है, पर इसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रत्यक्षता उपचारसे बतलायी गई है ।

यत्स्यादव ग्रहेहावायानतिधारणा परायत्तम् ।
आद्यं ज्ञानं द्वयमिह यथा तथा नैव चान्तिमं द्वैतम् ॥७०४॥

मति व श्रुतज्ञानकी तरह अवधिज्ञानमें व मनःपर्ययज्ञानमें परायत्तता का अभाव—अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानकी प्रत्यक्षता बतलानेका और भी कारण बता रहे हैं । जैसे अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा इन चार प्रकारके ज्ञानोंसे पराधीन होते हुये, इन पद्धतियोंसे पराधीन हुए जैसे आदिके दो ज्ञान होते हैं इस तरह ऐसे ज्ञानांशोंसे पराधीन होकर अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान नहीं होते । तो अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञानमें मति श्रुतज्ञानसे विशेष स्वतंत्रता मिली है इस कारणसे उन्हें प्रत्यक्ष कहा गया है । अवग्रह ज्ञान कहलाता है इंद्रिय और मनसे प्रथम ही प्रथम वस्तुका जो कुछ ज्ञान है वह अवग्रह है, जिसको कि प्रथम ही ग्रहण किया है और अवग्रहसे जाने हुए पदार्थमें कुछ विशेष निर्णय करना जहां कि संदेह उपस्थित होता हो याने संदिग्ध अंशको दूर करके कुछ विशेष विचारमें आना ईहा ज्ञान है और ईहा से जो समझा है उसमें पूर्ण निश्चय आ जाना अवाय ज्ञान है । और, अवाय ज्ञानसे जो जाना है उसे भूल न सकना ऐसी धारणा बनना सो धारणा है । ये चार पद्धतियाँ मतिज्ञानमें आती हैं और धारणा पूर्वक श्रुतज्ञान बनता है । तो श्रुतज्ञानमें भी इस पद्धतिका उपयोग हुआ है । तो इस तरह दो ज्ञान जैसे पराधीन हैं यों अवधि और मनःपर्ययज्ञान नहीं होते, इस कारण इन्हें प्रत्यक्ष कहा गया है ।

दूरस्थानर्थानिह समक्षमिव वेत्ति हेलया यस्मात् ।
केवलमेव मनःसादवधिमनः पर्ययद्वयं ज्ञानम् ॥७०५॥

अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञानकी प्रत्यक्षताका रूप—मतिज्ञान योग्य क्षेत्र में स्थित पदार्थको जानता है और मतिज्ञानसे ही जाने हुए पदार्थमें श्रुतज्ञानकी प्रवृत्ति होती है । अतएव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान नियमित विषय वाले हुए, लेकिन अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान बाहरमें रहने वाले पदार्थोंको भी लीलामात्रसे प्रत्यक्षकी तरह जान लेता है । तो ये दोनों ज्ञान इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं रखते, केवल इसका किसी प्रकार अन्तः करणसे सम्बन्ध रहता है । केवल अन्तःकरणके सम्बन्धसे ही ये दोनों ज्ञान दूरवर्ती पदार्थोंको भी जान लेते हैं । किस तरह अन्तः करणका सम्बन्ध इससे होता है इस सम्बन्धमें भली प्रकार बता दिया गया है, फिर भी संक्षेपसे इतना समझ लेना चाहिए कि प्रथम तो ज्ञाता मनसे विचार करता है कि मैं इसको समझूं, उसके बाद फिर पद्धति पूर्वक मनःपर्यय ज्ञानकी प्रवृत्ति और अवधिज्ञानकी प्रवृत्ति होती है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानकी वर्तनाके समय मनका आलम्बन नहीं रहता है, पर इसका उपयोग बनानेके लिए पहिला विकल्प किया था, हमारे मनका सम्बन्ध इन दोनों ज्ञानोंमें पूर्व पद्धतिसे चलता है। दूसरी बात यह है कि अवधिज्ञान भीतर उत्पन्न हुए नाभिहृदय मस्तिष्क आदिक स्थानोंमें जो चिह्न प्रकट होते हैं उनके सहारेसे अवधिज्ञान जानता है वह अन्तःकरणकी ही एक पद्धति है और मनःपर्ययज्ञान दूसरेके मनमें आये हुए विकल्पको जानता है और परकीय मनोगत विकल्पके माध्यमसे वह विषयको दूरवर्ती पदार्थोंको जानता है। इन पद्धतियोंमें केवल मनकी किसी प्रकार सहायता हुई है किन्तु इन्द्रियकी वहाँ किसी भी प्रकार सहायता नहीं है और वह इस ढङ्गसे आत्मीयशक्तिसे अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान अपने विषयको जान लेता है। तो दूरवर्ती पदार्थोंको भूत भविष्यके पदार्थोंको प्रत्यक्षकी तरह जाननेके कारण इन दोनों ज्ञानोंको एकदेश प्रत्यक्ष कहा गया है।

अपि किंवाभिनिबोधिकबोधद्वैतं तदादिमं यावत् ।
स्वात्मानुभूतिसमये प्रत्यक्षं तत्समक्षमिव नान्यत् ॥७०६॥

स्वात्मानुभूतिके समयमें मतिश्रुत ज्ञानकी प्रत्यक्षसम प्रत्यक्षता – मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्षज्ञान बताये गए हैं और फिर जिस समय स्वात्माकी अनुभूति होती है उस समय इन दोनों ज्ञानोंका जो भी उपयोग है, जो भी ज्ञान हुआ है वह प्रत्यक्ष ज्ञानके समान प्रत्यक्ष कहा जाता है। स्वात्मानुभूतिके समयमें ही इस ज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञान कह सकते हैं, इसे प्रत्यक्ष क्यों कह दिया है, क्योंकि सिद्धान्त शास्त्रोंमें मति श्रुतज्ञानको परोक्ष स्पष्ट रूपसे बताया गया है तब किसी भी पद्धतिमें इसे प्रत्यक्ष मानना कैसे सङ्गत है? ऐसी आशङ्का हो सकती है। इस शङ्काका उत्तर स्वयं ग्रन्थकार अभी ही कुछ आगे देगा। लेकिन यहाँ संक्षेपमें इतना समझ लेना चाहिए कि जिस समय कोई ज्ञानी पुरुष स्वात्माकी अनुभूति कर रहा है तो उसको स्वात्म विषयमें अनुभूतिका विषय सुसम्वेदन प्रत्यक्षके द्वारा स्पष्ट रहता है। तो यह विशेषता बहुत बड़ी विशेषता है, इस दृष्टिसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञानको स्वात्मानुभूतिके समय हुएकी तरह प्रत्यक्ष ज्ञान माना जाना चाहिए।

तदिह द्वैतमिदं चित्स्पर्शादीन्द्रियविषयपरिग्रहणे ।
व्योमाद्यवगमकाले भवति परोक्षं न समक्षमिह नियमात् ॥७०७॥

इन्द्रियविषयपरिग्रहणमें मतिश्रुतज्ञानकी परोक्षता—मतिज्ञान श्रुतज्ञान इन दोनोंका विषय मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकारके पदार्थ हैं। मतिज्ञान ६ प्रकारका है—स्पर्शन इंद्रियसे उत्पन्न हुआ स्पर्शइन्द्रियजज्ञान, रसना इन्द्रियके साधनसे उत्पन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुआ रसना इन्द्रियज ज्ञान, घ्राण इंद्रियके साधनसे उत्पन्न घ्राणेन्द्रियज ज्ञान और नेत्र इंद्रियके साधनसे प्रकट हुआ नेत्रेन्द्रियज ज्ञान और कर्णेन्द्रियके निमित्तसे प्रकट हुआ शब्द विषयक ज्ञानकर्णेन्द्रियज ज्ञान कहलाता है। इस प्रकार अनीन्द्रियज अर्थात् मनसे उत्पन्न हुआ ज्ञान अनिन्द्रियज ज्ञान कहलाता है। इनमेंसे पूर्वके ५ इंद्रियज ज्ञान तो मूर्त पदार्थको ही विषय करते हैं। क्योंकि इनका विषय रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द है। किन्तु अतीन्द्रियज ज्ञान मूर्त पदार्थको भी और अमूर्त पदार्थको भी विषय करता है, और श्रुतज्ञान भी मूर्त अमूर्त पदार्थोंको जानता है। तो ये दोनों ज्ञान जब स्पर्श, रस, गंध वर्ण और शब्द इन विषयोंका बोध करने लगते हैं तब ये मति श्रुतज्ञान नियमसे परोक्ष हैं। वहाँ किसी भी प्रकार प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता है। और जब यह अमूर्त निज स्वात्माको बोधमें लेता है, अनुभवमें ग्रहण करता है तब यह ज्ञान समक्षकी तरह प्रत्यक्ष हो जाता है। यहाँ इतनी बात विशेष जानना चाहिए कि यदि यह ज्ञान आकाश आदिक अमूर्त पदार्थोंको जान रहा है तब यह प्रत्यक्ष नहीं कहला सकता, किन्तु निज अमूर्त अन्तस्तत्त्वको जब अनुभवमें ले रहे हैं तब ही इसे प्रत्यक्ष कहा गया है। अमूर्तको ग्रहण करनेपर भी यह भेद यहाँ कैसे आया कि अन्य अमूर्त को जाने ? तो प्रत्यक्षकी तरह न कहा जाय और आत्माको ग्रहण करे तब यह प्रत्यक्षकी तरह कहा जाय। यह अन्तर यों पड़ा कि जब निज आत्मा अनुभवमें आता है तो अनुभव करने वाला ज्ञान है और अनुभवमें आने वाला भी ज्ञानमय अंतस्तत्त्व है। तो वहाँ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय ये तीनों एक बन गए। वही अनुभवमें आ रहा, वही अनुभव करने वाला बन रहा और वही अनुभवन चल रहा, तो जहाँ ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेयकी एकता हो जाती है वहाँ ही यह अद्भुत प्रत्यक्षता प्रकट होती है और जब अमूर्त आकाश, काल आदिकका विचार चल रहा है उस समयमें जानने वाला तो यह आत्मा है और ज्ञेय बन रहा है। वे काल आदिक बाह्य पदार्थ हैं, उन बाह्य पदार्थों की जानकारीके समय ज्ञाता ज्ञेयकी एकता नहीं हो सकती, इस कारण वहां प्रत्यक्षता का अनुभव नहीं होता और इसी बातको स्पष्ट समझनेके लिए स्वयंको ऐसा पुरुषार्थ करना होगा। बाह्य परकीय विकल्प तोड़कर निर्विकल्प ज्ञानमय निज अंतस्तत्त्वका अनुभव करना होगा, निरन्तर उसकी जानकारी बनाये रहना होगा। ऐसे अपूर्व विश्रामके समयमें ज्ञानमें अनुभवमें स्वयं आ जायगा कि स्वानुभूतिके समय यह ज्ञान कैसा प्रत्यक्षकी तरह मालूम हो रहा है। जैसे मिश्रीकी चर्चा करनेसे कहीं मिठासका अनुभव नहीं होता, वहाँ मिठासका ज्ञान तो किया जा रहा है, मगर अनुभवनात्मक विधिसे ज्ञान नहीं हो रहा है और जब कोई मिश्रीको चखने लगे तो वह अनुभवात्मक विधिसे मिठासका ज्ञान करने लगेगा, इसी तरह आत्माका भी ज्ञान, जब ज्ञान ज्ञेयकी एकताकी विधि नहीं है तो वह चर्चा मात्र है। वहाँ आत्माकी अनुभूति और प्रत्यक्षता नहीं है, किन्तु जब सर्व विकल्प तोड़कर केवल ज्ञानमात्रको ही ज्ञानमें लेने लगे तो वहां ज्ञानानुभूतिकी प्रत्यक्षता अनुभवमें आ जाती है। तो यों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान स्वानुभूतिके समय प्रत्यक्षज्ञानके समान प्रत्यक्ष हो जाता है।

ननु चाद्ये हि परोक्षे कथमिव सूत्रे कृतः समुद्देशः ।
अपि तल्लक्षणयोगात् परोक्षमिव सम्भवत्येतत् ॥७०८॥

मति श्रुत परोक्षज्ञानकी स्वानुभूतिके समय प्रत्यक्ष हो जानेके कारण की जिज्ञासा—शङ्काकार कहता है कि तत्त्वार्थ सूत्रमें "आद्ये परोक्ष" यह सूत्र कहा गया है जिसमें स्पष्ट यह बताया है कि मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान परोक्ष-ज्ञान हैं तथा परोक्ष लक्षण भी इन दोनों ज्ञानोंमें भले प्रकार घटित होता है। जो इंद्रियमनकी सहायतासे उत्पन्न हो उसे परोक्षज्ञान कहा है। तो ये दोनों ज्ञान इंद्रिय और मनसे उत्पन्न हुए हैं फिर उन्हें स्वानुभूतिके समयमें प्रत्यक्ष क्यों बतलाया गया है। जिस समय सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्माकी अनुभूति करता है अर्थात् ज्ञान द्वारा ज्ञानमय आत्मतत्त्वको निर्विकल्प रूपसे जान रहा है उस समय मतिज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञान बताया है। तो यह तो आगम प्रमाणसे विरुद्ध बात आ जाती है। स्वानुभूतिके समयमें ग्रन्थकारने निर्विकल्प ज्ञानके समान प्रत्यक्ष कैसे बतला दिया है? अब इस शङ्काका उत्तर कहते हैं!

सत्यं वस्तुविचारः स्यादतिशयवर्जितोऽविसंवादात् ।
साधारणरूपतया भवति परोक्षं तथा प्रतिज्ञायाः ॥७०९॥

इह सम्यग्दृष्टेः किल मिथ्यात्वोदयविनाशजा शक्तिः ।
काचिदनिर्वचनीया स्वात्मप्रत्यक्षमेतदस्तियया ॥७१०॥

स्वानुभूतिके समय मतिश्रुतकी प्रत्यक्षता हो जानेका कारण मिथ्या-त्वोदय विनाशजा शक्ति—उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि जिस समय वस्तुका विचार किया जाता है तो उस विचारमें जो बात आती है। युक्तिसङ्गत बैठती है उसमें कोई विवाद नहीं रहता, इसी कारण वस्तु विचार अतिशयरहित होता है, अर्थात् किसीका प्रभाव किसीका दबाव वहाँ नहीं है किन्तु विचारमें विवाद न होना चाहिए तब ही ठीक है। यद्यपि यह बात ठीक है कि मतिश्रुत ज्ञान परोक्ष हैं और तत्त्वार्थ सूत्रके कर्ता भी मतिश्रुत ज्ञानको परोक्ष बतला रहे हैं, परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव की कुछ विशेषता हो जाती है। मिथ्यात्व कर्मका नाश हो गया तो ऐसी अनिर्वचनीय शक्ति प्रकट होती है कि उसे अपना आत्मा प्रत्यक्ष होने लगता है। तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका जो लक्षण किया गया है वह साधारण लक्षण पद्धतिमें लक्षणकी दृष्टिसे ये दोनों ज्ञान परोक्षज्ञान हैं, परन्तु अज्ञानीके मतिश्रुतज्ञाकी पद्धति और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ग्यानीके मति श्रुतग्यानकी पद्धति विलक्षण प्रकारकी है और उसमें भी स्वात्मविषयक मतिग्यानकी उपयोग परिणतिकी पद्धति और भी विशिष्ट प्रकारकी है तब सामान्य रूपसे मतिश्रुतग्यान परोक्ष कहे गए हैं तो भी दर्शन मोहनीयका क्षय होनेके कारण या उपशम अथवा क्षयोपशम होनेके कारण जो स्वानुभूति विशिष्ट मतिग्यान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष कहा जा रहा है। स्वानुभूतिको छोड़कर अन्य पदार्थोंके ग्रहण समयमें मतिश्रुतग्यान किसी भी प्रकार प्रत्यक्ष नहीं होते।

तद्भिज्ञानं हि यथा शुद्धस्वात्मानुभूतिसमयेस्मिन् ।
स्पर्शनरसनघ्राणं चक्षुः श्रोत्रं च नोपयोगि मतम् ॥७११॥

स्वानुभूतिके समय इन्द्रियज ग्यान न होनेके कारण प्रत्यक्षसमताकी सिद्धि—शुद्ध सहज अंतस्तत्त्वके अनुभवके समयमें वर्त रहे मति ग्यानको स्वात्मप्रत्यक्ष क्यों कहा गया है ? इसी कारण इस गाथामें बताया है। ग्रन्थकार कहता है कि शुद्ध स्वानुभूतिके समयमें स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु श्रोत्र ये पाँचों इन्द्रियां उपयोगी नहीं मानी गई हैं, अर्थात् जिस समय जीव ग्यानमात्र शाश्वत स्वच्छत्व शक्तिमय आत्माकी अनुभूति कर रहा है उस समय इंद्रियजन्य ग्यान नहीं हो रहा। कोई भी इंन्द्रिय उस समय कोई कार्य नहीं कर रही। पांचों ही इंद्रियां अपने विषयसे निवृत्त हो जाती हैं। यह स्थिति स्वात्मानुभूतिके सम्बन्धमें है। तो इंद्रियसे उत्पन्न होनेके कारण परोक्षता थी, अब अतिन्द्रियग्यान होनेसे परोक्षता न रही। कुछ थोड़ा मन उपयोगी होता है सो वह पूर्वकालमें उपयोगी होता है पीछे वहां मनका इस तरह उपयोग न रहकर वह मन स्वयं अमूर्त ग्यानरूप हो जाता है। इस प्रकार स्वात्मपदार्थके सम्बन्धमें मति-ग्यान प्रत्यक्ष कहा गया है, वह युक्तिसंगत है।

केवलमुपयोगि मनस्तत्र च भवतीह तन्मनो द्वेधा ।
द्रव्यमनो भावमनो नोइंद्रियनाम किल स्वार्थात् ॥७१२॥

शुद्धात्मानुभवके प्रकरणमें केवल मनकी उपयोगिता—स्वात्मानुभूतिके समय इंद्रियां तो उपयोगी होती नहीं, केवल मन ही उपयोगी होता है, उस मनको दो प्रकारका कहा गया है। द्रव्यमन और भावमन। मन और नोइंद्रिय ये दोनों एकार्थ-वाचक हैं। मनको ही एकेन्द्रिय क्यों कहा गया ? नो का अर्थ है ईसत। जो इंद्रियके ढङ्गसे अपना बाह्य रूप नहीं रखता, किन्तु अन्तरङ्गमें ही कोई सूक्ष्म रचना होती है इसलिए उसका नाम नोइन्द्रिय कहा गया है। अनीन्द्रिय भी इसीको कहते हैं। जो ईसत इंद्रिय हो उसे अनीन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियमें और मनमें यही अन्तर है कि इंद्रियां तो बाहरमें स्थित हैं, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ये शरीरमें बाह्यमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्थित हैं और इनका उपयोग भी बाह्य पद्धतिसे होता है। तथा इसका नियत विषय है। जिस इन्द्रियका जो विषय नियत है वह इन्द्रिय उस ही विषयको जानती है, लेकिन मन न तो बाह्यमें स्थित है और न नियत विषयको जानता है। ईसी कारणसे मनको ईमन इन्द्रिय बताया गया है और नोइंद्रिय कहा गया है। मनका दूसरा नाम अन्त: करण भी है। इस मनको अनवस्थित बताया गया है और किस ढङ्गसे इसका प्रभाव परिस्पंद रचना अन्य जगह भी कादाचित्क रूपसे कैसे हो रही है? इन सब बातोंके कारण मनको अनवस्थित कहा गया है तो यह मन नोइंद्रिय है। उस नोइंन्द्रियका तो उपयोग है स्वानुभूतिके लिये, पर इंद्रियका उपयोग वहाँ नहीं रहता।

द्रव्यमनो हृत्कमले घनाङ्गुलासंख्यभागमात्रं यत्।
अचिदपि च भावमनसः स्वार्थग्रहणे सहायतामेति ॥ ७१६ ॥

द्रव्यमनका स्वरूप इस गाथामें द्रव्यमनका स्वरूप कहा गया हैं। द्रव्यमन हृदयकमलमें रहता है और उसका अवगाहन घनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र है अत: शरीरके ही सूक्ष्म निर्माण रूप है। अत: अचेतन है, जड़ है। लेकिन जैसे जड़ इन बाह्य इन्द्रियोंके द्वारा भावेन्द्रिय ज्ञान उत्पन्न होता है। ऐसे ही द्रव्यमनके आश्रयसे भावमनकी निस्पत्ति होती है अर्थात् भावमन जिस समय पदार्थोंको विषय करता है, उस समय द्रव्यमन उसकी सहायतासे प्राप्त होता है। जीवके साथ ५ वर्गणाओंका सम्बन्ध है। वर्गणायें पौद्गलिक होती हैं आहार वर्गणा, शरीर वर्गणा, तैजस वर्गणा, कार्माण वर्गणा और मनो वर्गणा। इन ५ वर्गणाओंसे जीवका सम्बन्ध चल रहा है। यद्यपि एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यका अभाव है। जीवमें पुद्गल द्रव्य नहीं, पुद्गल के स्वरूपमें जीव द्रव्य नहीं परन्तु निमित्त नैमित्तिक भावसे इस तरहका सम्बन्ध चला आ रहा है तो उन वर्गणाओमेंसे जो मनोवर्गणा है उसके हृदयस्थानमें कमलकी तरह एक रचना बनती है उसे द्रव्यमन कहते हैं। उस द्रव्यमनमें अथवा उसके आश्रय से आत्माको हेय उपादेयरूप विशेष ज्ञान उत्पन्न होता है। इसीको भावमन कहते हैं। भावमन वही कहलाता है जहाँ हेय और उपादेयका विवेक है। हेयको छोड़नेका पौरुष है, उपादेयको ग्रहण करनेका पोरुष है। जिन जीवोंके मन नहीं होता ऐसे एकेन्द्रियसे लेकर दो इद्रिय तकके तो जीव हैं ही, पञ्चेन्द्रियमें भी कोई जीव होते हैं। तो जिन जीवोंके मन नहीं है वे भी आहारमें प्रवृत्ति करते हैं मनकी प्रवृत्ति भी उनके देखी जाती है। तो ये सब काम मनके बिना भी हो जाते हैं, इसमें हेय उपादेयके विवेककी कोई बात नहीं है यह तो संज्ञाके कारण जीवोंमें होती ही रहती है। तो मन वाले जीवोंमें श्रेष्ठ मन वाले मनुष्य माने जाते हैं। ज्ञानी जीवके उस द्रव्य मनके आलम्बन से हेय उपादेयरूप एक विशेष ज्ञान जगता है और वही अपनी धारामें चलता हुआ कभी आत्मतत्त्वके स्वरूपको ऐसे सूक्ष्म पद्धतिसे विषय करता है कि वहाँ विकल्प टूट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाते हैं। उस स्थितिमें मतिज्ञानको प्रत्यक्ष बताया गया है।

भावमनः परिणामो भवति तदात्मोपयोगमात्रं वा।
लब्ध्युपयोगविशिष्टं स्वावरणस्य क्षयाक्रमाच्च स्यात्॥ ७१४॥

भावमनका स्वरूप—इस गाथामें भावमनका स्वरूप कहा गया है। भावमन आत्माका ज्ञानात्मक परिणाम विशेष है। भावमनमें क्या चीज पाई जाती है? जो परखनेपर यही नजर आयगा कि एक ज्ञानभाव ही है, एक विवेक जगा है, वही भावमन है। तो ऐसा भावमन लब्धि और उपयोग सहित होता है। जैसे इन्द्रियलब्धि और उपयोगपूर्वक होता है अर्थात् उस इन्द्रियावरणका क्षयोपशम हो वह तो कहलाया लब्धि और विशेषमें इंद्रियकी वृत्ति लग गई हो यह कहलाया उपयोग। तो ऐसे ही मन भी लब्धि और उपयोग सहित होता है। अपने आवरण कर्मके क्षयसे जो एक विशुद्धि उत्पन्न हुई है उसका नाम तो लब्धि है और फिर मन अपने विषयमें लग जाय उसका नाम उपयोग है। उपयोग कभी कुछ होता कभी कुछ। अथवा लब्धिके रहते हुए भी उपयोगात्मक बोध न आये, ऐसी भी स्थिति बन जाती है, पर यह नियम है कि लब्धिके बिना उपयोग रूप बोध नहीं बन सकता। तो अमूर्त ज्ञानमात्र स्वात्मतत्व की ओर जब मनका उपयोग चला तो स्वात्मानुभावावरण कर्मका क्षयोपशम है, यह तो लब्धि है और स्वात्म विषयकी ओर मन लगा है यह उसका उपयोग है। अब इस लब्धि और उपयोगपूर्वक मनस्वात्मामें लगा रहनेपर ऐसी स्थिति होती है वह भावमन भी अमूर्त स्वात्मरूप निर्विकल्प बन जाता है ऐसी स्वात्मानुभूतिकी स्थितिमें मतिज्ञान को प्रत्यक्ष बताया गया है।

स्पर्शनरसनघ्राणं चक्षुः श्रोत्रं च पञ्चकं यावत्।
मूर्तग्राहकमेकं मूर्तामूर्तस्य वेदकं च मनः॥ ७१५॥

इन्द्रियों और मनकी विषयिताका निर्देश—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये ५ इंद्रियाँ मूर्त पदार्थको ग्रहण करने वाली हैं। स्पर्शन इंद्रिय स्पर्श परिणतिके परिचयके माध्यमसे मूर्त पदार्थको ग्रहण करती है। रसना इंद्रिय रसपरिणति के परिचयके माध्यमसे मूर्त पदार्थको ग्रहण करती है। घ्राण इंद्रिय गंध परिणतिके माध्यमसे गंधवान मूर्त पदार्थोंको ग्रहण करता है। चक्षु इंद्रिय रूपादिवान पदार्थोंको जानता है और श्रोत्र इंद्रिय शब्द परिणतिमय पदार्थको जानता है। स्पर्शनका विषय स्पर्श है, लेकिन स्पर्श मूर्त पदार्थसे भिन्न तत्त्व नहीं है और जब कि स्पर्शन इंद्रियके द्वारा स्पर्शकी प्रमुखतासे मूर्त पदार्थको ही जाना है इसी तरह ज्ञानमें जो कुछ आ रहे हैं इंद्रिय द्वारा वे सब मूर्त पदार्थ ही आते हैं। स्पर्श, रस, गंध और रूप ये चार तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुण परिणतियां हैं । सो ये पदार्थसे निराली नहीं हैं और शब्द है भाषा वर्गणाकी शब्दरूप व्यञ्जन परिणति । वह भी पौद्गलिक है । यों इस इंद्रियके द्वारा मूर्त पदार्थ जाना गया, किन्तु मन मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकारकी प्रवृत्तियोंको जानने वाला है । तो प्रकरण यह चल रहा था कि मन आत्माकी अनुभूति करता है । तो आत्मा अमूर्त पदार्थ है सो अमूर्तको मन जान सकता है । उसी प्रकरणमें यह बात चल रही है कि मनसे आत्मतत्त्वका परिचय शुरू हुआ, मनसे परिचय विशेष बना और मनसे आत्मा की अनुभूति जिस प्रकार हो सके उस पद्धति तक आये । अब जिस समय स्वानुभूति हो रही है उस समय मन द्रव्यमनका आश्रय छोड़ देता है और वह स्वयं ज्ञानरूप बन जाता है । इसी विषयको अगली गाथामें कह रहे हैं ।

तस्मादिदमनवद्यं स्वात्मग्रहणे किलोपयोगि: मन: ।
किन्तु विशिष्टदशायां भवतीह मन: स्वयं ज्ञानम् ।।७१६।।

स्वात्मग्रहणमें मनकी उपयोगिता व स्वात्मानुभूतिके समयमें मनकी ज्ञानरूपता – इस कारण यह बात निर्दोषरूपसे सिद्ध हो जाती है कि अपने आत्माके ग्रहण करनेमें उपयोगी मन है, इन्द्रिय नहीं । इन्द्रिय यदि अपने विषयोंको स्पर्श रस आदिकको ग्रहण करनेमें लग रही हो तो ऐसी स्थितिमें स्वात्माका उपयोग नहीं बनता । तो मन स्वात्माको अनुभव लेगा, इन्द्रिय स्वात्माको न अनुभव सकेंगी । तो स्वात्माके ग्रहण करनेमें मन उपयोगी बना और वहाँ इतनी विशेषता बन जाती है कि वह मन जो द्रव्यमें स्वात्माके ग्रहण करनेमें उपयुक्त होता है विशेष अवस्थामें अमूर्त पदार्थके ग्रहण करनेके समयमें जब कि एक तान होकर मनमें अमूर्त पदार्थके स्वरूपको ग्रहण कर रहा है उस समय वह स्वयं भी अमूर्तज्ञान हो जाता है । अब वहाँ भाव मन अर्थात् विकल्पात्मक परिणति वाला मन न रहा विकल्पात्मक परिणति मेटकर निर्विकल्प रूपमें वह मन आया तो आते ही वह मन न रहा, किन्तु वह सहज ज्ञान बन गया, क्योंकि वह भावमन चेतनकी ही तो परिणति है और सहज ज्ञान होना यह भी चेतनकी ही परिणति है । अतएव विशेष स्थितिमें भाव मन अमूर्त ज्ञानरूप हो जाता है । इस प्रकरणमें यह बात कही गई थी कि स्वात्मानुभूति यद्यपि मतिज्ञान स्वरूप है तो भी वह निरपेक्ष ज्ञानके समान प्रत्यक्ष ज्ञान रूप है, इसी बातको यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं कि हाँ मतिश्रुत यद्यपि परोक्षज्ञान हैं और वे इंद्रिय मनसे उत्पन्न होते हैं, उनमेंसे मन अमूर्त पदार्थको भी जानने वाला होता है । तो जब वह मन अमूर्त पदार्थके जाननेमें उपयोगी हो रहा हो और स्वात्माका ही ग्रहण करनेके सम्बन्धमें वह मन रूप ज्ञान भी अमूर्त ही है और इसी कारण वह ज्ञान अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है । इंद्रियां तो मूर्त पदार्थको ग्रहण करती हैं पर यह मन अनीन्द्रिय यह अमूर्त पदार्थको ग्रहण करनेमें उपयुक्त गई । तो इन्द्रिय मूर्त पदार्थको ही ग्रहण किया करती हैं इसी कारण इंद्रियको स्वात्मानुभूतिके ग्रहण करनेमें अधिकार नहीं है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नासिद्धमेतदुक्तं तदिन्द्रियानिन्द्रियोद्भवं सूत्रात् ।
स्यान्मतिज्ञाने यत्तत्पूर्वं किल भवेच्छ्रुतज्ञानम् ॥७१७॥

अयमर्थो भावमनो ज्ञानविशिष्टं स्वयं हि सदमूर्तम् ।
तेनात्मदर्शनमिह प्रत्यक्षमतीन्द्रियं कथं न स्यात् ॥७१८॥

आत्मदर्शनकी अतीन्द्रियता व प्रत्यक्षताकी सिद्धि—मति श्रुतज्ञान परोक्ष हैं फिर भी स्वात्मानुभूतिके समयमें प्रत्यक्षकी तरह होते हैं, यह कथन असिद्ध नहीं है। सूत्रमें भी यही बतलाया है कि मतिज्ञान और मतिज्ञान होने वाला श्रुतज्ञान ये इंद्रिय और मनसे उत्पन्न होते हैं और वहाँ इतनी विशेषता और है कि भावमन व विशेष ज्ञान जब अमूर्त पदार्थको ग्रहण कर रहा हो उस समय वह स्वयं अमूर्त हो जाता है। उस अमूर्त मनरूप ज्ञानके द्वारा अर्थात् अमूर्त आत्मतत्त्वकी भाँति परिचय द्वारा जब स्वत्वका ग्रहण हो रहा है तो उस समय वह ज्ञान प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय हो जाता है। सारांश यह है कि केवल स्वात्माको जानने वाला जो मानसिक ज्ञान है वह अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष कहलाता है और यों स्वानुभूतिके समयमें यह ज्ञान निरपेक्ष स्पष्ट और अतीन्द्रिय है।

अपि चात्मसंसिद्ध्यै नियतं हेतू मतिश्रुती ज्ञाने ।
प्रान्त्यद्वयं विना स्यान्मोक्षो न स्यादृते मतिद्वैतम् ॥७१९॥

आत्मसिद्धिके लिये मतिज्ञान व श्रुतज्ञानकी नियतता— इसी सम्बन्धमें एक विशेष बात और कही जा रही है कि आत्माकी शुद्धिमें तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ही ज्ञान नियत हैं अर्थात् आत्मसिद्धि इन दो ज्ञानोंके कारणसे होती है। केवल ज्ञान तो फलरूप है यह तो साक्षात् स्पष्ट अनन्त आत्मशुद्धि है ही, उसके पहिले चार ज्ञान होते हैं! मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान इनमेंसे अवधि और मनःपर्ययज्ञान इन दोके बिना मोक्ष हो जाता है अर्थात् मतिश्रुत इन दो ज्ञानोंके बिना मोक्ष नहीं होता। इससे भी यह जाहिर होता है कि आत्माकी भली प्रकार सिद्धि करनेके लिए मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ही नियत कारण कहलाते हैं। सिद्धान्त शास्त्रमें बताया है कि अनेक जीव मति और श्रुतज्ञान इन दो के बाद केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध हुए हैं। कोई मुनीश्वर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान इनको पाकर केवली हुए हैं और कोई मति, श्रुती मनःपर्यय ऐसे तीन ज्ञान प्राप्त करके केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले हुए हैं और कोई मुनि मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय इन चार ज्ञानों में रहकर तपश्चरण करते हुए केवल ज्ञानकी प्राप्ती की है। तो यों आत्माकी सिद्धिमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निगत कारण मतिश्रुति तो अवश्य ही हुए। अवधिज्ञान न हो, मनःपर्ययज्ञान न हो तब भी केवल ज्ञान हो जाता है और अतीन्द्रिय आनन्द पदकी प्राप्ति हो जाती है। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान ये दो ही आत्माकी प्राप्तिमें मुख्य कारण हैं इस कारण ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि मतिज्ञान द्वारा स्वात्मा का साक्षात्कार हो जाता है जब कि मिथ्यात्वका उदय नहीं है, ऐसी स्थितिमें मतिज्ञानकी विशिष्ट शुद्ध परिणति हो जाती है और वह मतिज्ञान जब अमूर्त जो अन्तस्तत्त्वका परिचय करे। तो वहां एक तान होकर यही मतिज्ञान अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष बन जाती है।

ननु जैनानामेतन्मतं मतेष्वेव नापरेषां हि।
विप्रतिपत्तौ बहवः प्रमाणमिदमन्यथा वदन्ति यतः ॥७२०॥

अन्य मतोंमें अन्य प्रकार भी प्रमाण माने जानेके कारण जैन सम्मत प्रमाण व्यवस्थामें विसंवादकी आशंका – अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि सभी मतोंमें एक जैन मत ऐसा है कि जिसमें प्रमाणकी ऐसी व्यवस्था की गई है जहाँ अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव दोष नहीं आते, यह कथन तो असिद्ध है, विवाद ग्रस्त है। प्रमाणके सम्बन्धमें अनेक लोग अनेक प्रकारकी धारणायें बनाते हैं, किन्तु विचार करनेपर किन्हींमें असम्भव दोष है किन्हींमें अव्याप्ति दोष है, किन्हीमें अतिव्याप्ति दोष है। निर्दोष लक्षण नहीं बन पाता। अनेकान्तवादमें जो प्रमाणका लक्षण किया गया है वह सर्व दोषोंसे रहित हित अहितकी प्राप्ति व परिहार करनेमें समर्थ प्रमाण बन जाता है। यहां प्रमाणका लक्षण ज्ञान बताया गया है। ज्ञान ही प्रमाण होता है क्योंकि सारी व्यवस्था है, निर्णय निश्चय ज्ञान द्वारा ही होती है इसलिए प्रमाण ज्ञान भी है ऐसा ज्ञानका लक्षण बताकर फिर ज्ञानके प्रत्यक्ष परोक्ष आदिक विधि पूर्वक भेद किए गए हैं।

वेदाः प्रमाणमिति किल वदन्ति वेदान्तिनो विदाभासाः।
यस्मादपौरुषेयाः सन्ति यथा व्योम ते स्वतः सिद्धाः ॥७२१॥

वेदप्रमाणवाद—कोई दार्शनिक ऐसा कहते हैं कि वेद ही प्रमाण हैं और वे वेद पुरुषके बनाये हुए नहीं हैं, आकाशकी तरह स्वतः सिद्ध हैं। यह लक्षण केवल एक वेदको धर्मरूप मानके प्रयोजनसे किया गया है। वेद ही प्रमाण है। पुरुष कुछ भी जाने, अच्छा जाने तो भी वह प्रमाण नहीं है और एक वेद जो कि अपनी किसी भाषाका है वह प्रमाण हो गया, ऐसा कहनेसे वेदकी प्रतिष्ठाका सहारा मिला, पर वेद प्रतिष्ठाकास हारा यों देनेकी भावना जगी कि वेदके कर्मकाण्डोंसे धर्मस्थापन भी प्रकट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहेगा। और विषयोंका साधन भी बना रहेगा, आदिक कुछ अनेक प्रयोजन हो सकते हैं जिससे ज्ञानकी प्रमाणताका निषेध कर दिया जाय और एक वेदको ही प्रमाण कहा जाय, किन्तु ज्ञानके बिना तो कोई बाहरी चीज जो यथार्थतया सहायक है वह भी प्रमाण नहीं कहलाता। इस विषयको आगे संक्षेप रूपमें बतावेंगे।

अपरे प्रमानिदानं प्रमाणमिच्छन्ति पण्डितम्मन्याः।
समयन्ति सम्यगनुभवसाधनमिह यत्प्रमाणमिति केचित् ॥७२२॥

प्रभानिदानकी प्रमाणताका दर्शन—कोई पुरुष प्रभाके निदानको प्रमाण मानता है। प्रभा नाम है प्रमाणके फलका। प्रमाणमें जो कुछ समझा जाता, किया जाता उसका फल क्या है? तो फल यह है कि किसी काममें जुट जाय, किसी काम को छोड़ दे, ऐसे ही कुछ काम होते हैं, यदि वह प्रभा हुई तो प्रभाके निदानका नाम प्रमाण है अर्थात् प्रमाणके फलका नाम प्रभा है। उस फलका जो साधकतम करण है जिसके द्वारा वह प्रभा साधी जाती है वही प्रमाण है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। और कोई लोग यों भी कहते हैं कि जो सम्यग्ज्ञानमें कारण पड़ता हो वही प्रमाण है। जैसे पदार्थ हो तो ज्ञान बनता है, तो पदार्थ ही प्रमाण है। प्रकाश हो तो ज्ञान बनता है, तो प्रकाश ही प्रमाण है। इस तरह ज्ञानमें जो जो साधन पड़ते हैं वे सब प्रमाण हैं। इन्द्रिय प्रमाण हैं, इन्द्रियकी परिणतियाँ प्रमाण हैं। ऐसे अनेक साधन जो कि ज्ञानकी स्थितिमें हेतुभूत होते हैं वे प्रमाण कहलाते हैं, ऐसा कुछ दार्शनिक कहते हैं।

इत्यादि वादिवृन्दैः प्रमाणमालक्ष्यते यथारुचि तत्।
आप्ताभिमानदग्धैरलब्धमानैरतीन्द्रियं वस्तु ॥ ७२३ ॥

अतीन्द्रिय वस्तुस्वरूप न समझनेके कारण अन्य भी अन्यथा प्रमाण कल्पना—इत्यादिक प्रकारसे अनेक वादियोंने अनेक प्रकारसे प्रमाणका लक्षण कहा है। सो उन्होंने अपनी-अपनी रुचिके अनुसार बताया है। वस्तुके स्वरूपको समझना है, ऐसा लक्ष्य नहीं किया है। अतीन्द्रिय वस्तुके स्वरूपको नहीं पहिचाना है, सो नाना प्रकारके प्रमाणके लक्षण कहे जाते हैं और अपने आपको मैं आप्त हूं, प्रभु हूं, इस प्रकारकी अभिलाषासे चलाया जाता है। तो ऐसे अनेक वादीगण प्रमाणका स्वरूप अपनी अपनी इच्छाके अनुसार करते हैं लेकिन वे सब अपना लक्षण सहेतुक हो नहीं सकते, क्योंकि लक्षण बहुत हैं और परस्पर विरुद्ध लक्षण हैं। तो कैसे वे सब युक्त हो सकते हैं? तो उन प्रमाणोंमें दूषण आता है। इस ही बातका संकेत अब अगली गाथामें कर रहे हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पृकृतमलक्षणमेतल्लक्षणदोषैरधिष्ठितं यस्मात् ।
स्याद्विचारितरम्यं विचार्यमाणं खपुष्पवत्सर्वम् ॥ ७२४ ॥

स्याद्वादसम्मत प्रमाणस्वरूपके विरुद्ध प्रमाणकल्पनामें लक्षणदोष होनेसे असङ्गतता--जिन प्रमाणोंका उल्लेख ऊपर किया गया है वे सब दूषित हैं, इसका कारण है कि प्रमाण भी जो निर्दोष लक्षण होना चाहिए--अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव दोषसे रहित होना चाहिए वह लक्षण उनके कहे हुए प्रमाणमें घटित नहीं होता है। तो उक्त सब प्रमाणोंके लक्षण दोषसे सहित हैं और वे बिना विचारे ही पीछे सुननेमें रमणीक लगते हैं, पर उनपर कुछ विचार किया जाय तो जैसे आकाशका फूल कोई वस्तु नहीं है असिद्ध है। इसी तरहसे ये सब प्रमाण भी असिद्ध होते हैं, क्योंकि प्रमाण वह है जो हितकी प्राप्ति कराये और अहितका परिहार कराये। ऐसा करानेमें समर्थ ज्ञान ही होता है। सभी लोगोंके अनुभवमें यह बात होगी कि ज्ञान जगा कि हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार हो जाता है। लेकिन उक्त प्रमाणके लक्षणमें ज्ञानको साथ रखा ही नहीं गया है। कोई ज्ञानके कारण बताते हैं कोई अचेतन दोषीपन बताते हैं। ज्ञान ही प्रमाण है, इस बातका संकेत इन दार्शनिकोंमेंसे किसीने भी नहीं किया है। इस कारण ये प्रमाणके लक्षण दूषित हैं और केवल सुनने मात्र समय तक ये बिना विचारे सुन्दर प्रतीत होते हैं।

अर्थाद्यथा कथञ्चिज्ज्ञानादन्यत्र न प्रमाणत्वम् ।
करणादि बिना ज्ञानदचेतनं कः प्रमाणयति ॥ ७२५ ॥

ज्ञानमें ही प्रमाणत्वकी सिद्धि उक्त गाथामें यह बताया है कि अन्य वादियोंके माने हुए प्रमाणके लक्षणमें दूषण आता है। उन्हीं दूषणोंको कुछ कुछ स्पष्ट करनेके लिए क्रमशः कुछ वर्णन किया जा रहा है। किसी भी प्रकार ज्ञानको छोड़कर अन्य किसी भी लक्षणमें प्रमाणता आ नहीं सकती, कारण उसका यह है कि ज्ञान यदि नहीं है तो जड़ अचेतन करण आदिकको कौन प्रमाण समझ लेगा ? प्रमाणका फल है अज्ञानकी निवृत्ति होना, अर्थात् प्रमा जो जानकारी है, जिसमें अज्ञान नहीं रहा वही तो प्रमाणका फल है और उसका कारण है वह भी अज्ञान निवृत्ति रूप होना चाहिए याने अज्ञान दूर करना तो फल है और अज्ञान दूर करनेका जो कुछ भी साधन होगा वह भी ज्ञान रूप ही होगा। जड़ पदार्थ प्रमेय भले ही है मगर वह कभी प्रमाण नहीं हो सकता। प्रमाण वही हो सकता याने अज्ञानकी निवृत्ति वही कर सकता जो स्वयं ज्ञानरूप हो गया अपने आपको तो जानने वाला हो वही परका ज्ञाता हो सकता है किन्तु जो स्वयं अज्ञानरूप है वह किसी भी प्रकार परका जाननहार नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बन सकता। ऊपर जो अन्य वादियोंने प्रमाणके लक्षण किए हैं और वहाँ बताया है कि जो प्रमाका कारण हो सो प्रमाण है और प्रमाका जो करण माना है वह सब जड़ माना है। इन्द्रिय है, प्रकाश है ये सब माने गए हैं प्रमाणरूप हैं, ये सब जड़। तो जो जड़ है, स्वयं अपनेको नहीं पहिचान सकता है वह प्रमाण किस तरह हो जायगा ? तो इंद्रिय आदिक जो प्रमाके करण माने हैं ज्ञानहीन, वे प्रमाण नहीं हैं, किन्तु प्रमाण ज्ञान स्वरूप हो सकता है।

तत्रान्तर्लीनत्वाज्ज्ञानसनाथं प्रमाणमिदमिति चेत्।
ज्ञानं प्रमाणमिति यत्प्रकृतं न कथं प्रतीयेत ॥७२६॥

ज्ञानसहित करणको प्रमाण बतानेपर ज्ञानके ही प्रमाणत्वकी सिद्धि— यदि शङ्काकार यहां यह कहे कि हम तो ज्ञानसहित बाह्य कारणोंको प्रमाण मानते हैं याने वे इन्द्रिय प्रकाश आदिक सीधे प्रमाण हैं, पर उसमें ज्ञान अन्तर्लीन है इस कारण से ज्ञानसहित बाह्य करणोंको प्रमाण माना है। शङ्काकार यदि ऐसा आशय रख रहा है तब उसमें भी यही तो सिद्ध हुआ कि ज्ञान ही प्रमाण है, क्योंकि ज्ञानसहित वर्णों को प्रमाण माननेकी बात कह रहे हो। तो वह कारण चाहे कितना ही हो जाय, इंद्रियका व्यापार हो, कारकोंकी सकलता आ जाय, पदार्थका सान्निध्य हो, इंद्रिय और पदार्थ इन दोनोंका भिड़ाव हो आदि कितने ही करण हो जायें, पर पदार्थका बोध करने वाला प्रमाण तो ज्ञान ही पड़ेगा। ज्ञान नहीं है तो कितने ही कारण जुट जायें वे सब सामग्री निरर्थक हैं, सर्वसामग्री सामने हैं और उस समय ज्ञान भी हो रहा है। अब वहाँ विवेक करनेकी बात है कि इस हीन अवस्थामें यद्यपि इन्द्रिय आदिक बाह्य करण भी कारण हो रहे हैं पर साक्षात् बोध करता कौन है ? तो विचार करने पर यह स्पष्ट विदित होगा कि ऐसा बोध कर्ता ज्ञान ही है। तब ज्ञान ही प्रमाण है।

ननु फलभूतं ज्ञानं तस्य तु करणं भवेत्प्रमाणमिति।
ज्ञानस्य कृतार्थत्वात् फलवत्त्वमसिद्धमिदमिति चेत् ॥७२७॥

ज्ञानको प्रमाण न मानकर प्रमाणफल माननेकी आरेका—शङ्काकार यहाँ अपना अभिप्राय रख रहा है कि ज्ञान तो प्रमाणका फल हुआ करता है। प्रमाण हुआ, अब उसका फल क्या है कि ज्ञान बन गया। तो ज्ञान तो प्रमाणका फल है, अब जो प्रमाणका फल है, याने ज्ञान उसका जो कारण है सो ही तो प्रमाण होता है, और यदि ज्ञानको ही प्रमाण मान लिया जाय तो ज्ञान तो प्रमाण बन गया और ज्ञान ही उसका फल है तो ज्ञानका प्रयोजन तो पहिले ही बन चुका याने ज्ञानका जो फल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होना चाहिए ज्ञान वह फल तो पहिले ही हो गया। अब इस ज्ञानका फल क्या होगा तो यदि ज्ञानको ही प्रमाण मान लिया जायगा तो ज्ञानका कोई फल न रहेगा। फल का अभाव हो जायगा। इस कारण प्रमाण और प्रमाणका फल ये दोनों ही जुदे होना चाहिए। प्रमाणका फल ज्ञान है तो उससे निराला कोई प्रमाण होना चाहिए, क्योंकि प्रमाण फल रहित नहीं होता, उसका फल अवश्य होना चाहिए। तो ऐसी स्थितिमें में ज्ञानको तो प्रमाणका फल मान लेना उचित है और उस ज्ञानके कारणको जो कि करण इन्द्रिय प्रकाश आदिक बताये हैं उनको प्रमाण मान लेना ठीक है। यदि इस तरह प्रमाण और प्रमाणका फल न माना जाता तब फलका अभाव हो जायगा अथवा प्रमाण, प्रमाणका फल, ये दोनों ही कुछ न रहेंगे। अब इस शङ्काके उत्तर में कहते हैं।

नैवं यतः प्रमाणं फलं च फलवच्च तत्स्वयं ज्ञानम् ।
दृष्टिर्यथा प्रदीपः स्वयं प्रकाश्यः प्रकाशकश्च स्यात् ॥७२८॥

उक्त शंकाके समाधानमें प्रमाण, प्रमाणफल व प्रमाण करणकी अभिन्नताका कथन शङ्काकारकी उक्त शङ्का यों सङ्गत नहीं हैं क्योंकि प्रमाण और प्रमाणका फल और उसका कारण ये सभी ज्ञानरूप ही पड़ते हैं। प्रमाण है सो वह ज्ञानस्वरूप है, प्रमाणका फल है सो भी ज्ञानस्वरूप है। प्रमाणको जो कारण है याने प्रमाणके फलका जो कारण वह भी ज्ञानरूप है और इस बातको समझनेके लिए एक प्रसिद्ध दृष्टान्त यह है कि जैसे दीपक स्वयं प्रकाशमान है और वह दूसरेके प्रकाश का भी कारण है। तो जैसे दीपक अपना भी प्रकाश करता हैं और दूसरोंका भी प्रकाश करता है इसी तरह ज्ञान खुद प्रमाण है, जाननहार है और उसका फल अज्ञान दूर होना या इष्ट पदार्थका ग्रहण करना, अनिष्ट पदार्थका त्याग करना वह सब भी ज्ञानरूप है। ज्ञानसे भिन्न न कोई प्रमाण है और न कोई उसका फल है। यहाँ यह आशङ्का न रखनी चाहिए कि ऐसा माननेसे तो प्रमाण और फल एक ही हो जायेंगे पर फल कुछ न रहेगा। यह आशङ्का इस कारण न रखनी चाहिए कि प्रमाण और प्रमाणका फल ये कोई भिन्न नहीं हैं। ज्ञान ही प्रमाण है और ज्ञान ही प्रमाणका फल है। ज्ञान और प्रमाण एक ही वस्तु हैं और प्रमाणका जो फल है वह उस प्रमाणसे सर्वथा भिन्न नहीं है। कथंचित् भिन्न कह सकते, उसमें फल समझनेके लिए कि ज्ञान हुआ तो इसका फल क्या हुआ ? तो ज्ञान हुआ सो तो प्रमाण है और ज्ञान होनेसे अज्ञान न रहा अथवा इष्ट वस्तुका ग्रहण करनेका विवेक न जगा, अनिष्ट वस्तुके छोड़नेकी बुद्धि आई यह सब प्रमाणका फल है। और भी मोटे रूपमें समझना हो तो यों समझिये कि पहिले ज्ञान हुआ, उसके बाद जो यह बुद्धि आई कि यह छोड़ना चाहिए, यह ग्रहण करना चाहिए अथवा उनकी उपेक्षा जगे यह उसका फल हुआ,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो प्रमाणरूप ज्ञान है, जो प्रकृत लक्षणसे लक्ष्यरूप किया गया है वही ज्ञान तो अज्ञान से निवृत्त होता है और उसीमें हेय उपादेयकी बुद्धि बनती है। अथवा उपेक्षारूप बुद्धि होती है। इस कारण ज्ञान ही प्रमाण है और ज्ञान ही फल है। तो ज्ञानको छोड़कर अन्य कोई करण अचेतन प्रमाण नहीं हो सकता और ज्ञान ही प्रमाण है ज्ञान ही फल है, ऐसा अनुभवमें भी आता है। यहाँपर यह आशङ्का न रखनी चाहिए कि फिर फल क्या रहेगा ? वही फल है। उससे जो जीवको एक बुद्धि जगती है कि उपेक्षा करने योग्य चीजमें उपेक्षा करली, ग्रहण करने योग्य चीजको ग्रहण करले, त्यागने योग्य चीजको त्याग दे, यही उसका फल है। अतः मानना चाहिए कि प्रमाण ज्ञान ही हो सकता है, अज्ञान नहीं हो सकता।

उक्तं कदाचिदिन्द्रियमथ च तदर्थेन सन्निकर्षयुतम् ।
भवति कदाचिज्ज्ञानं त्रिविधं करणं प्रमायाश्च ॥ ७२९ ॥

पूर्वं पूर्वं करणं तत्र फलं चोत्तरोत्तरं ज्ञेयम् ।
न्यायात्सिद्धमिदं चित्फलं च फलवच्च तत्स्वयं ज्ञानम् ॥ ७३० ॥

स्याद्वाद विधिसे निरखनेपर प्रमाणत्वके अनेक कथनोंमें ज्ञानके ही प्रमाणत्व, प्रमाणफल और प्रमाणसाधत्वकी सिद्धि — अब स्याद्वाद विधिसे उन प्रमाणके सब लक्षणोंपर दृष्टिपात कीजिए ! कभी इंद्रियको भी प्रमाण कह दिया जाता है। कुछ दार्शनिक लोग तो सैद्धान्तिक रूपसे इन्द्रियको प्रमाण मानते हैं, सैद्धान्तिक रूपसे इन्द्रियको प्रमाण माननेका अर्थ है कि इन्द्रिय ही साक्षात् प्रमाण है, ज्ञान तो उसका फल है या जो कुछ आगे होगा। तो सैद्धान्तिक विधिसे जो इंद्रियमें प्रमाण माना है वह प्रमाण शुद्ध नहीं है। हाँ कभी लोकव्यवहारमें भी लोग कहते हैं कि हमारी इंद्रियाँ प्रमाण हैं। और इतना ही क्या लिखित दस्तावेज भी अर्थात् कागज भी सामने उपस्थित कर दिया जाता है कि लो यह प्रमाण है ! तो यों व्यवहारमें अचेतन पदार्थोंको भी प्रमाण कहनेकी रूढ़ि है, पर वहाँ तथ्य समझना चाहिए। वहाँपर भी ज्ञान प्रमाण है, यही बात सिद्ध होती है। जैसे इन्द्रिय प्रमाण कहा है तो इन्द्रियरूप अवस्थासे भी एक आत्माकी अवस्था बनती है। इन्द्रियां दो हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। तो भावेन्द्रिय है वह आत्माकी एक अवस्था है, वह ज्ञानस्वरूप है। भावेन्द्रिय द्रव्येन्द्रियके साधनसे विकसित होती है। तब कारण होनेसे द्रव्येन्द्रियको भी लोग प्रमाण कह देते हैं, पर सैद्धान्तिक रूपसे वे जड़ द्रव्येन्द्रिय प्रमाण नहीं हो सकते, वे तो एक छद्मस्थ अवस्थामें ज्ञानकी उत्पत्तिके साधकरूप हैं। तो कभी व्यवहारमें जड़ इंद्रियको प्रमाण कह दिया तो कारणरूपसे उपचारसे कह दिया है, पर वह यथार्थ नहीं है, उसका मर्म समझना चाहिए—उस कारणसे जो भावेन्द्रियकी उत्पत्ति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होती है, जो भावेन्द्रिय स्वयं आत्माकी एक अवस्था बन रही है वह ज्ञानरूप है और वह प्रमाण है। व्यवहारमें निवृत्ति और पदार्थके सम्बन्धको भी प्रमाण कहते हैं। उसमें भी तथ्य बसा है और वह तथ्य है कि वहाँ भावज्ञान समझा जा रहा है। तो वहाँ भी ज्ञान ही प्रमाण सिद्ध हुआ, किन्तु जो लोग सैद्धान्तिक रूपसे इंद्रिय या पदार्थ के सम्बन्धको प्रमाण कहते हैं वह युक्तिसङ्गत नहीं है। जैसे हाथ आदिक इन्द्रियोंका सम्बन्ध भी ऐसे हुआ तो सम्बन्धमात्र प्रमाण नहीं है, किन्तु सम्बन्ध होनेपर जो ज्ञान जगा वह ज्ञान प्रमाण है। तो सन्निकर्ष अवस्थामें जो ज्ञान जगा उस ज्ञानपर दृष्टि जाय और उसे प्रमाण माने तब तो मर्म समझा है और ज्ञान ही प्रमाण है, यह बात सिद्ध हुई है। और कोई केवल जड जड़के सम्बन्धको ही प्रमाण कहे, तो जैसे जड़ प्रमाण नहीं हो सकता उसी प्रकार जड़का संयोग भी प्रमाण नहीं हो सकता। इंद्रियाँ भी जड़ हैं और पदार्थ भी जड़ हैं। तो जड़ोंका संयोग प्रमाण नहीं है किन्तु जो उस स्थितिमें ज्ञान जगा है वह ज्ञान प्रमाण है। कभी एक व्यापारको भी प्रमाण कह दिया जाता है याने इंद्रियकी जो वृत्ति है वह प्रमाण है। तो इन्द्रियकी वृत्ति क्या है? इंद्रियाँ यदि भावेन्द्रिय रूपसे मानी जा रही हैं तो उसकी वृत्ति वह भी ज्ञानरूप है। तो इंद्रिय वृत्ति यदि भावेन्द्रिय रूप है तो वह भी ज्ञान प्रमाण है, यह सिद्ध कर रहा है। अथवा परम्पर्या बाह्य साधनके रूपसे द्रव्येन्द्रियका व्यापार कहा जा रहा है। यदि वह एक कारण परम्परारूपसे प्रमाण कह दिया जाय वह एक औपचारिक बात है, पर साक्षात् बात नहीं हुई। साक्षात् कारण को स्वयं ज्ञानरूप ही पड़ता है। अब इन तीन आत्माओंकी अवस्थाओंमें अर्थात् भावेन्द्रिय प्रमाण है इन्द्रिय और पदार्थका सन्निकर्ष हुआ है उस सन्निकर्षमें जो अभिमुखता हुई है वह प्रमाण है, और इंद्रियका जो व्यापार है याने भावेन्द्रियकी जो वृत्ति है वह प्रमाण है, इस तरह इन तीनोंमें विचार किया जाय तो पहिली चीज कारण पड़ती है। दूसरी ज्ञान अवस्था कार्य अथवा फल पड़ता है और उसके बादमें ज्ञान अवस्थाका कारण पूर्वज्ञान अवस्था पड़ता है। जैसे इन्द्रियाँ प्रमाण हैं तो यहां कारण पड़ा इंद्रियाँ और पदार्थके सन्निकर्षरूप प्रमाणका। इन्द्रिय पदार्थका सन्निकर्ष प्रमाण है यह कारण पड़ा इंद्रिय वृत्तिका। इस तरह यहां यह तीनों ही ज्ञानरूप पड़ा, तो ज्ञान ही प्रमाण है और ज्ञान ही फल है, यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है।

तत्रापि यदा करणं ज्ञानं फल मिद्धिरस्ति नाम तदा ।
अविनाभावेन चितो हानोपादानबुद्धिसिद्धित्वात् ॥७३१॥

ज्ञानकी करणरूपता व फलरूपताका प्रतिपादन— यहां भी यह समझना चाहिए कि जिस समय ज्ञान करण पड़ता है उस समय आत्माकी त्याग और ग्रहण रूप विधियाँ उसका फल कहलाती हैं। अर्थात् पूर्व ज्ञान करण हुआ और उत्तर ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फल हुआ। ऐसा अनुभवमें आता भी है कि ज्ञान हुआ और ज्ञानके बाद तुरन्त ही और अन्य बुद्धि जगी कि इसको यों छोड़ना चाहिए अथवा ग्रहण करना चाहिए। तो यों ज्ञानकी धारा सतत् चलती रहती है और उतरोत्तर ज्ञानके बाद ज्ञान विकसित होते चले जाते हैं। तो वहाँ ऐसा भेद डालकर समझा जा सकता है कि पहिले ज्ञान हुआ, बादमें त्याग ग्रहण हुआ। तो त्याग ग्रहणमें भी बुद्धि ही इस प्रकारकी उत्पन्न हुई है, बाह्य वस्तुओंका त्याग करना अथवा ग्रहण करना ये तो बाहरी बातें हैं, वहाँ जो त्याग और ग्रहणकी बुद्धि जगी है वास्तविक त्याग और ग्रहण तो वह कहलाता है। तो ज्ञान ही प्रमाण है, ज्ञान ही फल है। यदि प्रमाण और फलकी जुदी जुदी स्थितियाँ समझना है तो इस तरह समझा जा सकता है कि पहिले जो ज्ञान हुआ है वह तो प्रमाण है, और इसके तुरन्त बाद जो त्याग ग्रहणकी बुद्धि जगी है वह प्रमाण का फल कहलाती है।

नाप्येतदप्रसिद्धं साधन साध्यद्वयोः सदृष्टान्तात्।
न बिना ज्ञानात्त्यागो भुजगादेर्वा स्रगाद्युपादानम् ॥७३२॥

ज्ञानको साधन और साध्य माननेकी अविसंवादिता—ज्ञानका कारण भी अर्थात् साधन भी ज्ञान पड़ता है और साध्यका ज्ञान पड़ता है यह बात अप्रसिद्ध नहीं है किन्तु दृष्टान्तसे सिद्ध है, साधन ज्ञान पड़ता है। जैसे सर्प आदिकका त्याग करता है कोई तो उसे ज्ञान हो तभी तो वह हटा। हितकी प्राप्तिमें जैसे ज्ञान समर्थ है उसी प्रकार अहितके परिहारमें भी ज्ञान समर्थ है जैसे जो इष्ट पदार्थ लगतें हैं माला, भजन आदिक उनका ग्रहण करते हैं जीव तो ज्ञान हो तभी तो वे कर रहे हैं, इसी तरह अनिष्टका परिहार होता है इस ज्ञानबलसे ही होता है और जो हितकी प्राप्ति एवं अहितका परिहार करनेमें समर्थ हो वही प्रमाण कहलाता है। तो जो हितकी प्राप्ति कराये, अहितका परिहार कराये ऐसा साधन ज्ञान ही हो सकता है क्योंकि ज्ञान बिना ये दोनों काम सम्भव नहीं हैं। अब फल पर विचार करें तो फल भी ज्ञान रूप ही होता है। जैसे ज्ञान प्रमाण हो उसका फल क्या हुआ ? अज्ञानकी निवृत्ति ही हुई तो अज्ञान निवृत्ति करनेमें कौन समर्थ हुआ ? यह ज्ञानभाव ही समर्थ है। अतः यह बात प्रमाण सङ्गत है। ज्ञान ही प्रमाण कहलाता है और फल भी ज्ञान से अभिन्न है।

उक्तं प्रमाणलक्षणमिह यदनार्हतं कुवादिभिः स्वैरम्।
तल्लक्षणदोषत्वात्तत्सर्वं लक्षणाभासम् ॥७३३॥

अनार्हत प्रमाणलक्षणोंकी लक्षणाभासता—जो कुछ प्रमाणका लक्षण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऊपर बनाया गया है दूसरे दार्शनिकोंके यहाँ वह अनारहत साधन है अर्थात् जैन सम्मत दर्शन नहीं है। यह तो उन कुवादियोंने अपने मनसे गढ़कर अपनी ही स्वेच्छासे कहा है और उसमें लक्षणके तीन दोष आते हैं। लक्षणमें तीन प्रकारके दोष हुआ करते अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव। ये तीनों ही दोष उन वादियोंके कहे हुए प्रमाणके लक्षणमें आते हैं। किसीमें एक देश, किसीमें दो देश इस तरहसे वे दोषसे दूषित हैं। अव्याप्तिका अर्थ है कि जिसका लक्षण किया जा रहा है उस लक्ष्यमें सबमें यह लक्षण न पाया जाय कुछमें पाया जाय कुछमें नहीं उसे अव्याप्ति कहते हैं। अतिव्याप्तिका अर्थ है अधिकमें व्याप्त रहे, जो लक्ष्य नहीं हैं अलक्ष्य हैं उनमें भी व्याप्त रहें चाहे लक्ष्यमें सबमें व्याप्त रहें लेकिन अलक्ष्यमें भी जब लक्षणसे रहित हो गया तो लक्षणसे फिर पहिचान नहीं बन सकती। असम्भव दोष उसे कहते हैं कि जो लक्षण लक्ष्यमें पाया ही न जाय, तो असम्भव दोषसे कोई लक्ष्य नही सिद्ध होता, तो यह दोष कुवादियोंके कहे गए लक्षणमें आता है, इस कारण वह लक्षण नहीं किन्तु लक्षणाभास है। ये दोष किस प्रकार आते हैं? उनका अब वर्णन कर रहे हैं।

स यथा चेत्प्रमाणं लक्ष्यं तल्लक्षणं प्रमाकरणम्।
अव्याप्तिको हि दोषः सदेश्वरे चापि तदयोगात् ॥ ७३४ ॥

प्रमाकरणको प्रमाणलक्षण माननेमें अव्याप्तिदोष—यदि प्रमाण लक्ष्य है और उसका लक्षण बनाया जाता है जो प्रमाका करण हो तो प्रमाकरण लक्षण है प्रमाणका, ऐसा माननेपर अव्याप्ति दोष आता है, क्योंकि प्रमाका करण प्रमाण है। ऐसी बात तब सिद्ध होती जब कि जितने भी प्रमाण हैं उन सब प्रमाणोंमें प्रमाकरण पाया जाता है, जो लोग ईश्वरको प्रमाण मानते हैं नैयायिक दर्शनमें कहा है कि— 'तन्मैप्रमाणं शिवः' अर्थात् वह ईश्वर मुझे प्रमाण है। तो ईश्वरको प्रमाण मान लिया तो लक्षणमें ईश्वर भी आ गया। लेकिन प्रमाकरण लक्षण ईश्वरमें नहीं पाया जाता। वह किस तरह नहीं पाया जाता? प्रमाकरणका अर्थ क्या है? प्रमाके करण क्या-क्या माने गए हैं? उनपर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि प्रमाकरणलक्षण ईश्वरमें नहीं घटित होता, लेकिन प्रमाण मानते हैं तो यही तो अव्याप्ति हुआ कि जो लक्षण पूरे लक्ष्यमें नहीं रहता है, लक्ष्यके एक देशमें रहे तो कुछ प्रमाणों में लक्षण किसी प्रकार सिद्ध कर लिया जाय, पर ईश्वर प्रमाकरण प्रमाणका लक्षण है, यह लक्षणाभास है शुद्ध लक्षण नहीं है। इसी बातको स्पष्ट करते हैं।

योगिज्ञानेपि तथा न स्यात्तल्लक्षणं प्रमाकरणम्।
परमाण्वादिषु नियमान्न स्यात्तत्सन्निकर्षश्च ॥७३५॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

'प्रमाकरणं प्रमाणं' इस लक्षणकी योगिज्ञानमें भी अवृत्ति होनेसे अव्याप्ति दोषकी सिद्धि—ईश्वर प्रमाण माना गया है न्याय दर्शनमें, पर वह प्रमा का कारण नहीं है, प्रमाका आधार माना गया है। इस तरह भी वह लक्षण घटित नहीं होता था अब दूसरा लक्षण उसमें दिया जा रहा है। योगियोंका ज्ञान नैयायिक दर्शनने योगियोंके ज्ञानको दिव्यज्ञान माना है। ऐसा माना है कि योगिज्ञान सूक्ष्म और अमूर्त पदार्थोंका भी प्रत्यक्ष करता है लेकिन लक्षण प्रमाकरण इनमें नहीं पाया जाता प्रमाका करण मायने साधन। क्या क्या है इंद्रिय? इंद्रियका सन्निकर्ष, इंद्रियका व्यापार, अब जरा विचार कीजिए कि योगिके ज्ञान होनेमें इंद्रिय करण नहीं होरही हैं, जैसे ईश्वरके प्रमाण होनेमें इंद्रिय करण नहीं हैं। और इंद्रियका सन्निकर्ष अर्थात् इंद्रिय और पदार्थ इनका भिड़ाव तो जैसे इंद्रियमें सन्निकर्ष घटित नहीं होता इसी तरह योगिज्ञानमें भी इंद्रिय सन्निकर्ष घटित नहीं होता। योगियोंका ज्ञान इंद्रिय और पदार्थके सन्निकर्षसे नहीं सम्भव है क्योंकि सन्निकर्ष तो स्थूल और मूर्तिक पदार्थोंके साथ ही सम्भव है। जो सूक्ष्म हैं अमूर्त पदार्थ हैं उनमें सन्निकर्ष नहीं बन सकता। प्रमाण आदिक सूक्ष्म हैं, आत्मा अमूर्त है उनमें इन्द्रियसन्निकर्ष कैसे हो सकेगा? और इन्द्रियका व्यापार भी योगिज्ञानमें नहीं है, क्योंकि योगियोंका ज्ञान इन्द्रियके व्यापार से नहीं चलता। तो योगिज्ञानको भी प्रमाण माना है नैयायिक दर्शनने और प्रमाणका लक्षण वहाँ घटित नहीं होता। अतएव यह प्रमाकरण नामक लक्षण अव्याप्ति दोषसे दूषित है वह लक्षण नहीं किन्तु लक्षणाभास है।

वेदाः प्रमाणमत्र तु हेतुः केवलमपौरुषेयत्वम्।
आगमगोचरताया हेतोरन्याश्रितादहेतुत्वम् ॥७३६॥

वेदप्रमाणवादियों द्वारा प्रस्तुत अपौरुषेयत्व व हेतुकी असिद्धि—वेद को प्रमाण मानने वाले वेदान्ती जरा सिद्ध तो करें कि वेद किस तरह प्रमाण हो सकते हैं? यहाँ प्रमाणका लक्षण घटित ही नहीं होता अतएव असम्भव दोष कहना चाहिए। वेदको प्रमाण माननेमें यही तो एक हेतु दिया जाता है कि वेद अपौरुषेय हैं तो इस विषयमें सुनो! प्रथम बात तो यह है कि वेद अपौरुषेय नहीं हो सकते, क्योंकि वह एक कृति है, रचना है, वाक्य विन्यास है। शब्द पदोंसे बनाये हुए हैं अतः अपौरुषेय होनेसे कोई बात प्रमाणभूत ही हो जाय, यह प्रमाण सिद्ध बात नहीं है। अपौरुषेय बातें तो पापकी प्रवृत्तिकी परम्परा भी है। तो क्या वह प्रमाणभूत हो जायगी? हाँ अपौरुषेय यदि प्रमाण सिद्ध है तो प्रमाणभूत है, और अपौरुषेय बात प्रमाणभूत नहीं है, वह प्रमाण नहीं है। वौद्ध वेद अपौरुषेय कैसे होगा? अनादिपनेका हेतु देते हैं कि वेद अनादि प्रवाहसे चला आया है इसलिए वह अपौरुषेय है, वह नित्य है। तो यह बतलाओ कि वह प्रवाहकी नित्यता वेदमें जो मानी हो तो क्या उस शब्दमें है या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशेष क्रमसे रची गई जो शब्दोंकी प्रक्रिया है क्या उस प्रक्रियामें आनन्द प्रवाह है ? याने वेद तो शब्दरूप है। जो शब्द लिखे हैं, जिन शब्दोंको पढ़ते हैं वही तो वेद हैं। या कागज स्याही वगैरह वेद हैं ? कागज, स्याहीको तो कोई भी प्रमाणकी बात सोच नहीं सकता। शब्दकी बात हो कोई कह सकेगा कि वही वेद है। तो शब्द मात्र क्या अनादि प्रवाहसे चले आ रहे हैं ? या विशेष आनपूर्वी क्रमसे रचे गये जो शब्द हैं उनको कहा जा रहा है कि ये अनादि प्रवाहसे हैं ? यदि कहो कि शब्द मात्रके लिये कह रहे हैं तो जितने भी शब्द हैं वे सभी अनादि प्रवाहसे चले आये सिद्ध हो गये। क्योंकि अनादि प्रवाहको शब्दमात्र मान रहे तो जितने भी शब्द हैं सभी वेद कहलाने लगेंगे। तब सभीके आगम वेद कहलायेंगे, उनमेंसे यह नहीं यह है यह विश्लेषण न किया जा सकेगा। यदि कहा जाय कि जो शब्द प्रणाली कुछ क्रमपूर्वक लगाई गई है, जो धातु शब्द विभक्त वाक्यका यथाक्रमसे रखना यह वेद कहलाता है और यह अनादि प्रवाहसे चला आया है। यदि ऐसा माना जाय तो वहाँ यह जिज्ञासा रहेगी ही कि इन शब्दोंका इस तरह जो रखना होता है वह कैसे अनादिसे बात मानी जायगी। किसीने ही तो रखा है शब्दोंका क्रम।

वेद परिज्ञानकी अविसंवादिताकी मीमांसा करनेपर अपौरुषेयत्वकी असिद्धि—अथवा यह बताओ कि उन क्रमपूर्वक रखे गए शब्दोंका अर्थ किसीने समझा भी है या नहीं ? यदि नहीं समझा है तब उसका कुछ ज्ञान ही न हो, कुछ बात ही नहीं हो रही, प्रमाण किसमें लगाया जाय ? अगर समझ हुआ है तो यह बताओ जरा कि उन विशिष्ट क्रमसे रखे गए शब्दोंका अर्थ जिसने भी समझा है अथवा उसका जो कोई भी व्याख्यान कर रहा है वह सर्वज्ञ है या अल्पज्ञ है ? यदि सर्वज्ञ है तो वेदके समान सर्वज्ञके वचन भी प्रमाणरूप क्यों न माने जायेंगे ? सर्वज्ञ तो प्रमाणभूत चीज है ही। जो सबको जानता है ऐसा ज्ञान प्रमाणभूत न होगा क्या ? और, जब सर्वज्ञ सिद्ध हो गया तो सर्वज्ञताके कारण ही प्रमाण है यह मानना चाहिए। यह बात तो विचारिये कि यह वेदमें जो कुछ लिखा है वह परमार्थभूत है या नहीं ? लेकिन वेदका व्याख्याता सर्वज्ञ है तो सर्वज्ञताके कारण प्रमाणता आयी, न कि अपौरुषेयताके कारण आयी। यदि यह बात उठायी जाय कि नहीं, वेदका व्याख्यान करने वाला तो अल्पज्ञ पुरुष ही है। तो जब वेद व्याख्याता अल्पज्ञ है तो उसके कठिन कठिन वाक्यों का अर्थ वह उल्टा भी कर सकता है। वाक्य स्वयं अपने अपने अर्थ दुनियाँको नहीं घोषित करते कि मेरा अर्थ यह है। यदि वह पुरुष अज्ञानी है, रागादिक दोषोंसे दूषित है तो वह विपरीत अर्थ निरूपण करेगा ही, अतएव सिद्धि क्या हुई ? कोई प्रमाणताकी बात नहीं आयी। यदि ऐसा उत्तर देते हैं कि व्याख्यानकी परम्परा चली आयी है। वेदोंका अर्थ लोग करते चले आये हैं उस परम्पराके कारण वह व्याख्याता सही निरूपण कर सकता है ऐसा कहना भी सङ्गत नहीं है। परम्परा भी चली आयी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो लेकिन जो सूक्ष्म पदार्थ हैं अतीन्द्रिय हैं उनमें अल्पज्ञोंके व्याख्यानकी प्रवृत्ति संशय-रहित नहीं हो सकती। संशय होगा और कदाचित् उल्टा व्याख्यान भी हो सकता है। और, यह बात तो अभी ही प्रकट है कि व्याख्यान परम्परासे प्रमाणता मानी गई होती तो व्याख्यानोंमें फिर नाना भेद क्यों पड़ गए? कोई उसीका विधि अर्थ करता है कोई भावना अर्थ करता है, कोई उसी वाक्यका नियोग रूप अर्थ करता है। तो ये भिन्न भिन्न अर्थकी प्रतिपत्तियाँ क्यों प्रमाण मान ली गई हैं? इस कारण प्रकट सिद्ध है कि अनादि परम्परासे वेद नहीं चला आया, वह अपौरुषेय नहीं है, प्रमाण भी नहीं है। वेद कैसे अनादि सिद्ध किया जा सकता है?

अस्मर्यमाण कर्तृत्व व वेदाध्ययनपूर्वकत्व हेतुमें अपौरुषेयत्व साधनकी अक्षमता—यदि कहा जाय कि जब वेदका बनाने वाला आज नहीं है तो पहिले भी नहीं था, यह तो कोई युक्ति नहीं है। इस तरह तो अनेक बातोंमें भी कहा जा सकता कि इसका बनाने वाला आज नहीं है तो पहिले भी न था। सभी दार्शनिकोंके ग्रन्थ अथवा उनकी श्रुतियाँ, उनके बनाने वाले आज नहीं हैं तो उन्हें भी कहा जा सकता कि उनका बनाने वाला पहिले भी न था, तो यह युक्ति कोई सङ्गत नहीं है, इसमें अविनाभावी व्याप्ति सिद्ध नहीं होती। यह कहना भी सङ्गत नहीं है कि वेदका अध्ययन अध्ययनपूर्वक चला आया है। जैसे कि आजके अध्ययनसे पहिले भी अध्ययन था अध्ययन था, यह बात प्रमाणतामें यों नहीं कह सकते कि सभी ग्रन्थोंके लिए यह बात कही जा सकती है कि श्रुति, भारत, पुराण आदिकका अध्ययन भी अध्ययनपूर्वक है, क्योंकि प्रथम अध्ययन अध्ययनपूर्वक देखा जा रहा है। तो इन बातोंसे अनादिता सिद्ध नहीं की जा सकती। इनका करने वाला कोई नहीं है, अपौरुषेय हैं, यह बात किसी भी युक्तिसे सिद्ध नहीं बनती। यदि कोई यह कहे कि उसके कर्ताका स्मरण भी नहीं हो रहा इसलिये कोई कर्ता नहीं, तो ऐसी बहुत सी पुरानी वस्तुवें, टूटे-फूटे कुवा, मकान आदिक, जिनके कर्ताका स्मरण नहीं होता तो क्या वे भी अपौरुषेय बन जायेंगे? उन्हें भी फिर अपौरुषेय मानें! फिर एक वेदको ही क्यों अपौरुषेय माना जा रहा है? आदिक अनेक बातें अनुभवमें प्रसिद्ध हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि वेद अपौरुषेय नहीं, प्रमाणभूत नहीं, ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है। ज्ञान ही प्रमाण है, इससे विपरीत कोई लोग लक्षणका कुछ भी लक्षण बनायें वह लक्षण निर्दोष नहीं हो सकता। जो केवल अपौरुषेयको हेतु बताकर वेदको प्रमाण स्वीकार करता है तो प्रथम बात यह है कि वेद कोई शब्द ही है, किसी खास प्रक्रियासे उनको योजित किया है, वे ही एक मूर्तिरूपमें लिख दिये गये हैं तो उनका यह आकार कर्तापनेको सिद्ध करता है और उसके कर्ताका अनेक लोग स्मरण भी करते हैं। जैसे पिटकत्रय ग्रंथमें वेदके कर्ताका स्मरण किया है इस कारण वेद अपौरुषेय हैं, यह बात नहीं बनती। और, कदाचित् अपौरुषेय भी मान लिया जाय तो अपौरुषेय होनेके कारण प्रमाणता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं आया करती। यदि उसका व्याख्याता अथवा मूल प्रसङ्ग सर्वज्ञ हो तो सर्वज्ञताके कारण प्रमाणता है न कि शब्दके कारण। और यदि सर्वज्ञको वक्ता मान लेते हैं ये वेदवादी तो उनके ही सिद्धान्तसे विरुद्धता है। उनका सिद्धान्त है कि धर्मकार्यमें वेद ही प्रमाण है। लो फिर सर्वज्ञका वचन प्रमाण बन गया और सर्वज्ञका वचन हो भी नहीं सकता, क्योंकि जो सर्वज्ञके वचन हैं उनमें पूर्वापर कहीं विरोध नहीं आता। लेकिन यहाँ कहीं हिंसाको मना करनेकी बात लिखी है तो थोड़ी दूरमें हिंसा करनेकी बात लिख देते हैं और इन शब्दोंमें लिख देते हैं कि यज्ञमें पशुको होम दो तो वह धर्म है हिंसा नहीं ऐसे शब्दोंमें लिख डालते हैं तो कैसे समझा जाय कि इसके प्रणेता सर्वज्ञ देव हैं। वेदको मानने वालोंमें भी कुछ लोग किसी अंशको प्रमाण मानते हैं, कोई किसी अंशको। तो अनेक लोग जिस अंशको अप्रमाण मानते हैं, जो ऐसे ही सारे अंश हैं जिसे लोग अप्रमाण मानते हैं। किसी अंशको प्रमाण कहा है तो यों भी अप्रमाण बन गया। वेदोंमें जब ऋषियोंके नाम भी आये हैं—अमुक ऋषि, अमुक ऋषि तो नाम ही यह सिद्ध करता है कि वेद पौरुषेय है। जिस समय ये ऋषि हुए होंगे उस समय जिनका धर्म है उनका नाम रख दिया गया है।

अपौरुषेयत्व व आगमगोचरत्व हेतुमें अन्योन्याश्रय दोष—वेदको प्रमाण सिद्ध करनेके लिए एक आगमत्व हेतु दिया जाता है जिसका रूप यह है कि वेद प्रमाण है आगम होनेसे। तो यहाँ जब पूछा जाता है कि वेद ही आगम क्यों है? तो उत्तर दिया जाता है कि वेद आगम है अपौरुषेय होनेसे। अच्छा, अपौरुषेय कैसे है? उत्तर दिया जाता आगम होनेसे। तब यहाँ अन्योन्याश्रय दोष आता है। जब अपौरुषेय सिद्ध हो ले तब तो आगम सिद्ध होगा और जब आगम सिद्ध हो ले तब अपौरुषेय सिद्ध होगा। बात सीधी यों मान लेनी चाहिये कि वेदमें जो कहा है उसमें जो ज्ञान हुआ है वह संशय विपर्यय व अनध्यवसायसे यदि रहित है तो वह ज्ञान निर्दोष होनेसे प्रमाणभूत होगा। प्रतिपादित विषयकी मीमांसा किये बिना न तो आगम कहकर प्रमाणता सिद्ध की जा सकती है और न अपौरुषेय कहकर प्रमाणता सिद्ध की जा सकती है।

अचेतनमें प्रमाणत्व न आनेसे ज्ञानमें ही प्रमाणत्वकी सिद्धि—तथ्य दृष्टिसे विचार करनेपर वेद प्रमाण है यह बात सिद्ध नहीं होती, क्योंकि अचेतन होनेसे। जैसे इंद्रियाँ प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि अचेतन हैं, ज्ञानस्वरूप नहीं हैं। इंद्रिय का पदार्थोंका सन्निकर्ष भी प्रमाण नहीं है, क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप नहीं है। जो ज्ञान है सो ही प्रमाण है। कभी-कभी लोकव्यवहारमें तीन बातोंको प्रमाण रूपसे उपस्थित करते हैं—एक लिखित दस्तावेज, दूसरा गवाह और तीसरा कब्जाका होना। जिनके ११-२० वर्षका कब्जा है तो वे कहते हैं कि यह जमीन मेरी है, इसका प्रमाण है कि २० वर्षसे हमारा कब्जा है, तो वह कब्जा प्रमाण मानते हैं। कोई लिखित दस्तावेज

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही सामने रख देते हैं और गुस्सामें आकर कहते हैं कि देखो ! हमारा यह दस्तावेज प्रमाण है। तो वे उस स्याही, कागज आदिकको प्रमाण बोल देते हैं। कभी गवाहको सामने खड़ा कर देते हैं कि यह है प्रमाण ! तो वह गवाह जो सकल सूरत वाला व्यक्ति है क्या वह प्रमाण है ? वस्तुतः विचारो तो इन तीनों बातोंमें ज्ञान ही आया और ज्ञान ही प्रमाण बना। २० वर्षसे कब्जा है इस तरहका लोगोंको जो ज्ञान बना वह ज्ञान प्रमाण है, कब्जा क्या प्रमाण है। इसी तरह लिखित दस्तावेजको पढ़ कर जो लोगोंको ज्ञान बना वह ज्ञान प्रमाण है, न कि वह लिखा हुआ दस्तावेज प्रमाण है। इसी तरह गवाह खड़ा कर दिया तो वह गवाह प्रमाण नहीं है, गवाह जो बात कहेगा, उससे जो ज्ञान लोगोंको बनेगा, वह ज्ञान प्रमाण है। लेकिन लोकमें कहनेकी ऐसी ही रूढ़ि है। परन्तु उसका मर्म यह है कि इन निमित्तोंसे जो ज्ञान बनता है और ज्ञानमें यथार्थ बात बैठती है वह ज्ञान प्रमाण है।

एवमनेकविधं स्यादिह मिथ्यामतकदम्बकं यावत् ।
अनुपादेयमसारं बुद्धैः स्याद्वादवेदिभिः समयात् ॥ ७३७ ॥

मिथ्या मतोंकी स्याद्वादविरुद्धता होनेसे अनुपादेयता—उक्त कुछ श्लोकोंमें प्रमाणाभासोंकी बात कही है अथवा जो प्रमाण ही नहीं है, अप्रमाण है प्रमाणाभास तो फिर भी कुछ ज्ञानसे सम्बन्ध रखता है, मगर जो ज्ञानरूप नहीं है वह तो प्रमाणाभास भी नहीं कहा जाता, किन्तु प्रमाण नहीं है, इस तरह जैसे कि अनेक बातें अप्रमाणकी बताईं इसी तरह अनेक मिथ्या जो प्रचलित मत हैं वे सब मत भी असार हैं। स्याद्वादके जानने वाले ज्ञानी संतोंने उनको ग्रहण नहीं किया है। वे ग्रहण करने योग्य नहीं है क्योंकि वे अप्रमाणभूत हैं। जो बात जिस मर्मको लिए हुए है उस मर्मको तो हटा दिया जाय और जो बात स्पष्ट कहा है उसे ही ग्रहण किया जाय तो वह भी अप्रमाण बन जाता है। और मर्मको ग्रहण किया जाय तो उसे प्रमाण कहते हैं। तो वह प्रमाण उपचारसे हुआ। मर्मको बताया इसलिए प्रमाण कहना पड़ा तो यहाँ भी यह सिद्ध हुआ कि जो ज्ञान वही प्रमाण होता है अन्य कोई प्रमाण नहीं। इस तरह इस प्रमाणके प्रसङ्गमें यह बात सिद्ध हुई कि जो हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करानेमें समर्थ हो, ऐसा जो ज्ञान है सो ही प्रमाणरूप है।

उक्तं प्रमाणलक्षणमनुभवगम्यं यथागमज्ञानात् ।
अधुना निक्षेपपदं संक्षेपाल्लक्ष्यते यथालक्ष्य ॥७३८॥

प्रमाणस्वरूप कहकर निक्षेप स्वरूप कहनेका ग्रन्थकारका संकल्प—अब तक जैसा आगममें बताया है आगमके ज्ञानके अनुसार और अनुभवमें जो आने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

योग्य है, अनुभव गम्य है इस प्रकार प्रमाणका लक्षण कहा गया है। ज्ञान ही प्रमाण है यह बात अनुभव गम्य भी है और शास्त्रोंमें भी यही बताया गया है और अनेक शङ्का समाधानमें उस बातको स्पष्ट कर दिया गया है कि ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है। कोई ज्ञानके साधनभूत अन्य पदार्थ कारण प्रमाण नहीं बन सकते हैं ऐसा प्रमाण का लक्षण भली भाँति बता दिया गया। अब संक्षेपसे निक्षेपोंका स्वरूप कहा जायगा। निक्षेप यह शब्द ही निक्षेपका स्वरूप ही बता रहा है। निक्षेपका अर्थ है जो किसी निर्णयमें उपयोगको फेक दे। निक्षेपका भाव है कि जो बात यथार्थ है जैसा हमने समझा है उस समझी हुई बातको जो किन्हीं रूपोंमें बाँधकर व्यवहारमें प्रचलित करदे उसका नाम निक्षेप है। तो ऐसे निक्षेपका विस्तार पूर्वक अब आगे वर्णन होगा।

ननु निक्षेपो न नयो न च प्रमाणं न चांशकं तस्य ।
पृथगुद्देश्यत्वादपि पृथगिव लक्ष्यं स्वलक्षणादितिचेत् ॥७३९॥

प्रमाण और नयकी भाँति ज्ञानसाधनमें निक्षेपको स्वतन्त्रतया न कहे जानेके कारणकी जिज्ञासा—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि ज्ञानकी बात तो दो भागोंमें विभक्त हो गयी नय और प्रमाण। अब यह निक्षेप नामका कुछ तीसरा क्या बोला जा रहा है? कोई भी ज्ञान हो या तो वह नयरूप होगा या प्रमाणरूप। यदि वस्तुके सर्वस्वका परिचय हो रहा है तो वह प्रमाणरूप है, यदि वस्तुके एक देशका ज्ञान किया जा रहा है और साथ ही प्रतिपक्ष धर्मकी भी अपेक्षाकी जा रही है तो वह नय है। तो जितने भी ज्ञान हैं या तो वह नय होगा या प्रमाण। अब यह निक्षेप क्या है? निक्षेप न तो नय है न प्रमाण और न प्रमाणका अंश। नय और प्रमाणने निक्षेपका उद्देश्य ही जुदा बता दिया। निर्णय की हुई चीजका कोई रूपक बाँधकर उसका प्रतिपादन किया जाय सो ही निक्षेप है, सो यह तो विपरीत स्वरूप हो गया। यह न नयमें गया न प्रमाणमें, न उसका अंश बन सका। उद्देश्य जुदा है तो उसका लक्षण भी जुदा है। और जब निक्षेपका लक्षण जुदा हो गया तो निक्षेपका लक्ष्य भी कोई जुदा स्वतंत्र होना चाहिए। जैसे नयका विषय वस्तुका अंश कहा, प्रमाणका विषय वस्तुका सर्वस्व कहा तो निक्षेपका विषय क्या है सो बताओ वह भी कोई स्वतंत्र होगा ऐसा बताना चाहिए। अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं :

सत्यं गुणसाक्षेपो सविपक्षः स च नयः स्वपक्षपतिः ।
य इह गुणाक्षेपः स्यादुपचरितः केवलं स निक्षेपः ॥७४०॥

उक्त जिज्ञासाके समाधानमें निक्षेपोंकी उपचरितताका कथन- शङ्काकारकी उक्त शङ्का सत्य है जब तक कि इसपर सूक्ष्म रीतिसे विचार नहीं किया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता । यहां सूक्ष्मरितीसे विचार कीजिए नय तो गुण साक्षेप होता है अर्थात् गुणका आक्षेप करता है । आक्षेप मायने उसको बैठालना, ठीक करना । तब देखिये ! नयमें गौण और मुख्यकी अपेक्षा आयी । आक्षेप या विचार जब बनता है तब एक चीज गौण हुई और एक मुख्य । तभी प्राक्षेप बनता है । इस तरह नय विपक्ष सहित हो गया । नयने यदि स्यात् अस्ति कहा तो वहाँ स्यात् नास्तिकी अपेक्षा है इस लिए वह विवक्ष सहित है । विपक्ष सहित होकर भी नयने कहा कितना इसपर यदि दृष्टि दी जाय तो यही ज्ञात होता है कि उसने अपने विवक्षित अंशको ही कहा हैं । स्याद अस्ति इस नयने अस्तित्वकी ही बात कहा है नास्तित्वकी नहीं, लेकिन नास्तित्वकी बातकी अपेक्षा रखी जा रही है । नास्तित्वका खण्डन करके अस्तित्वकी बात कायम नहीं की जा सकती । तो नय अपने विवक्षित पक्षका स्वामी है । जो उस शब्दमें अर्थ भरा है वह उसपर आरूढ़ रहता है । स्याद अस्ति इतना नय केवल अस्तित्वकी बातको बता रहा है । इतनेपर भी यह न भूलना चाहिए कि वह दूसरा प्रतिपक्ष नयकी अपेक्षा भी रखता है । तो नयमें यह बात रखी हुई है कि वह एकको मुख्यतासे कहता है पर गौण रूपसे उसके प्रतिपक्षको भी दृष्टिमें रखता है लेकिन निक्षेपमें यह बात नहीं है । निक्षेप में तो गौण पदार्थमें मुख्यका आक्षेप किया जाता है। निक्षेपका असली प्रयोजन यह है कि गौण पदार्थमें मुख्य पदार्थकी बात संजोगना । है तो वह गौण पदार्थ, लेकिन उसमें मुख्य पदार्थकी व्याख्या करना यह निक्षेप कहलाता है इस कारण यह कहना चाहिए कि निक्षेप केवल एक उपचरित बात है । यहाँ यह जाने कि नय तो ज्ञान विकल्प हैं और निक्षेप पदार्थोंमें व्यवहारके लिए किए गए संकेतको कहते हैं. इस बातको प्रत्येक नयमें घटित स्वयं ग्रन्थकार अगली गाथामें करेंगे, पर निक्षेपका काम व्यवहार करने के लिए एक संकेत करना है । वह संकेत कहीं तो होता है तद्गुण और कहीं होता है अतद्गुण अर्थात् जैसा उस पदार्थमें गुण है उस पदार्थका उस प्रकार संकेत है वह तो तद्गुण संकेत हैं और वहाँ गुण ऐसा नहीं है फिर भी कहा जाता है वह अतदगुण साक्षेप है यों नय और निक्षेपमें अन्तर आया । नय और निक्षेपमें विषय सम्बंध है अर्थात् नय तो ज्ञान करने वाला है वह विषय करता है और निक्षेप नयका विषय-भूत पदार्थ है । निक्षेपने जो व्यवहार बनाया वह व्यवहार किसी नयसे बना ऐसा ज्ञान नय कराता है । इस कारण नय और निक्षेपका वर्णन करनेसे अन्तर स्पष्ट आ जाता है और निक्षेपका कहना भी पदार्थके अवगमके लिए जरूरी प्रतीत होता है । इतनेपर भी निक्षेपका कोई स्वतंत्र लक्ष्य हो, निक्षेपका विषयभूत कोई स्वतंत्र पदार्थ हो ऐसा नहीं है, और यह भी नहीं कहा जा सकता कि निक्षेपका फिर जब स्वतत्र कोई विषय नहीं है तो विवेचन ही क्यों किया जाता ? भाई इसका उत्तर यह है कि विवेचन किया जाता है जिज्ञासुवोंको समझानेके लिए । तो केवल समझानेके अभिप्रायसे निक्षेपका निरूपण किया गया है, वैसे निक्षेपका जिसने व्यवहार किया है वह नयमें गर्भित हो गया है । तब प्रयोजन निक्षेपका व्यवहार चलाना रहा । ज्ञान तो सारा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नयोंका करा दिया। निक्षेप जिस पदार्थका ज्ञान कराना चाहता है वह ज्ञान नय करा देना है और उस नयकी दृष्टिसे उन निक्षेपोंका व्यवहार चलता है तो निक्षेपका काम व्यवहार चलाना है इस लिए निक्षेपका निरूपण करना आवश्यक समझा गया है।

निक्षेपः स चतुर्धा नाम ततः स्थापना ततो द्रव्यम्।
भावस्तल्लक्षणमिह भवति यथा लक्ष्यतेऽधुना चार्थात् ॥७४१॥

निक्षेपके भेद—निक्षेप चार प्रकारका कहा गया है—नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप और भाव निक्षेप। इन चारोंका लक्षण क्या है ? वे सब लक्षण आगेकी गाथामें बताये जायेंगे। यहाँ केवल संज्ञाओंके नामपर ही अर्थ समझा जा सकता है। नामकी बात रखना, नामका व्यवहार करना सो नाम निक्षेप है। स्थापना का व्यवहार करना क्या है कि किसीकी स्थापना करके यह वही है, इस प्रकारका व्यवहार चलाना स्थापना निक्षेप है। भूत और भविष्यकी बातोंमें वर्तमान जैसी बात कह देना यह द्रव्य निक्षेप है और वर्तमानकी बातको वर्तमानकी ही बताना यह भाव निक्षेप है। इन चार प्रकारके निक्षेपोंमें आक्षेप किस किस तरह आया है ? उपचार किस किस तरहसे बना है ? उसकी यह बात अगली गाथासे स्पष्ट हो जायगी।

वस्तुन्यतद्गुणे खलु संज्ञाकरणं जिनो यथानाम।
सोऽयं तत्समरूपे तद्बुद्धिः स्थापना यथा प्रतिमा ॥ ७४२ ॥

नाम निक्षेप व स्थापना निक्षेपका स्वरूप—इस गाथामें नाम निक्षेप और स्थापना निक्षेपका स्वरूप बताया गया है। अतद्गुण वस्तुमें संज्ञा करना सो नाम निक्षेप है अर्थात् जिस वस्तुमें वह गुण तो नहीं है फिर भी उस नामसे वस्तुको पुकारने लगना, उसका नाम रख देना यह नाम निक्षेप है। तो नाम निक्षेपमें गुणनिक्षेप किस तरह होता है सो देखिये! गुणाक्षेपका अर्थ यह है कि गौण पदार्थमें मुख्य पदार्थका संजोगना। जैसे नाम निक्षेपमें क्या होता ? किसीका नाम बलवीरसिंह रख दिया तो वह अतद्गुण पदार्थ है, बलसे वह पूरा है ऐसा तो नहीं है और सिंहके समान वीर हो ऐसा भी नहीं है। है तो वह अत्यन्त दुर्बल, रोगी, तो बलबीरसिंहपनेका कोई गुण उस पुरुषमें नहीं है वह अतद्गुण पदार्थ है वह गौण पदार्थ है। उसमें व्यवहारके लिए उस मुख्य नामका आक्षेप किया गया है। यहाँ नामको मुख्य बनाया गया है तो गौण पदार्थमें मुख्य पदार्थका आक्षेप कर देना, रख देना यह कहलाता है निक्षेप। तो यहाँ अतद्गुणने नामको रख दिया सो यह नाम निक्षेप कहलाया। स्थापना निक्षेपमें भी देखिये! जैसे भगवानकी मूर्तिमें भगवानकी स्थापना की तो किसमें की ? मूर्तिमें वह मूर्ति गौण चीज है, क्योंकि वह भगवान नहीं है। भगवान न होकर भी मूर्तिको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भगवान कहते चले हैं। तो वह मूर्ति गौण पदार्थ है। इस प्रसङ्गमें और उस गौण पदार्थमें मुख्य पदार्थका आक्षेप कर दिया याने मुख्य पदार्थ वहाँ रख दिया गया है। मुख्य पदार्थ हुआ भगवान जिसका कि व्यवहार किया जा रहा है। जिसका व्यवहार किया जा रहा है वह तो कहलाता है मुख्य साक्षात् प्रयोजन और जिसमें व्यवहार किया गया है वह है गौण। तो मूर्ति यद्यपि तदाकार है तो यहाँ तदाकार अथवा किसी दृष्टिमें तद्गुण मूर्ति है मगर वह गौण पदार्थ है और उसमें भगवानका आक्षेप किया है, सामने भगवानको रख दिया है। व्यवहारके लिए लोगोंको समझा दिया है तो मुख्यकी स्थापनाकी है। यों स्थापना निक्षेपमें भी गौण मुख्यका आक्षेपण हुआ है, इस कारण यह स्थापनानिक्षेप कहलाता है।

ऋजुनयनिरपेक्षतया, सापेक्षं भाविनैगमादिनयैः।
छद्मस्थो जिनजीवो जिन इव मान्यो यथात्र तद्द्रव्यम् ॥७४३॥

द्रव्यनिक्षेपका स्वरूप–ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा न रखनेसे और भावी नैगम आदिक नयोंकी अपेक्षा रखनेसे द्रव्यनिक्षेपकी निष्पत्ति बनती है। जैसे अभी कोई महापुरुष छद्मस्थ ही है, भविष्यकालमें जिनेन्द्र होने वाला है तो छद्मस्थ जिनके जीवको साक्षात् होनेके समान समझना यह द्रव्यनिक्षेप है। द्रव्य निक्षेप यद्यपि तद्गुण वाला है, मायने जो उसके गुण हैं वे उसमें बताये जा रहे हैं, परन्तु वे गुण पदार्थमें आगे होने वाले हैं, नाम और स्थापनामें तो यही था कि वहाँ उसका गुण न था। गौणमें मुख्यका आक्षेप किया था। यहाँ उस छद्मस्थ जीवको अतिनिकटकालमें केवलज्ञान होने वाला है अतएव उसे अभीसे जिन कह देना यह द्रव्य निक्षेपका विषय है। जैसे महावीर प्रभु सर्वज्ञ होनेपर ही तो जिनेन्द्र कहलाये थे परन्तु उनको पहिले भी जिनेन्द्र नहीं हुए, केवलज्ञान नहीं हुआ फिर भी अल्पज्ञ अवस्थामें ही जिन कहना यह भावी द्रव्य निक्षेप है। अथवा महावीर प्रभुको मोक्ष गए हजारों वर्ष हो गए फिर दीवालीके दिन कोई कहे कि आज महावीर प्रभु मोक्ष गए हैं यह भूतमें द्रव्य निक्षेप है। अल्पज्ञ अवस्थामें जिन कहना यह भावी द्रव्य निक्षेप है। द्रव्य निक्षेपमें गौण बात इस कारण हुई कि वहाँ द्रव्य गुणोंकी अपेक्षा नहीं है। इस कारण भी ऋजुसूत्रनय का विषय नहीं है, किन्तु भूत और भावी नैगमनयका विषय है। फिर भी वर्तमानकी तरह बोल देना यह द्रव्य निक्षेप है। और यही हुआ गौणमें मुख्यका आक्षेप अथवा अतद्गुणमें उस गुणवानका आक्षेप।

तत्पर्यायो भावो यथा जिनः समवशरणसंस्थितिकः।
घातिचतुष्टयरहितो ज्ञानचतुष्टययुतो हि दिव्यवपुः ॥ ७४४ ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भावनिक्षेपका स्वरूप—इस गाथामें भाव निक्षेपका विषय बताया जा रहा है। वर्तमानमें जो पदार्थ जिस पर्याय सहित है उसी पर्याय वाला उसे कहना सो भाव निक्षेप है। जैसे समवशरणमें साक्षात् विराजमान अरहंतदेव हैं, चारघातिया कर्मोंसे रहित हैं, जिनका ज्ञान, दर्शन आनन्द, वीर्य अनन्त प्रकट हो गया है जिनका शरीर दिव्य परमौदारिक है ऐसे ही अरहंतको जिनेन्द्र कहना यह अरहंत है, यह जिन है, इसको भावनिक्षेप कहते हैं। भावनिक्षेपमें वर्तमान तद्गुण है। उस पदार्थका वह वर्तमानमें ही कथन करता है। इसी कारण यह भाव निक्षेप ऋजुसूत्रनय और एवभूत नयका विषय है। यहाँ कोई ऐसी जिज्ञासा कर सकता है कि भावनिक्षेप और ऋजुसूत्रनय तथा एवभूतनय इन तीनोंमें क्या अन्तर है? क्योंकि निरूपण तो तीनोंने ही वर्तमान पदार्थका किया है। तो अन्तर उनका यह समझ लेना चाहिए कि नय तो होते हैं विषयी अर्थात् विषय करने वाले और निक्षेप होते हैं विषय अर्थात् नयोंके विषयभूत होते हैं। तो यहाँ व्यवहारकथन करनेकी अपेक्षासे आक्षेप होता है, पर यह आक्षेप एक विशुद्ध है, वही गुण वर्तमानमें है और वही गुण यहाँ बताया जा रहा है इस कारणसे यह तद्गुणारोपी निक्षेप है। यद्यपि द्रव्यनिक्षेपमें भी पदार्थका ही गुण विषय किया गया था लेकिन वह भूत या वर्तमानमें हुए गुणोंका वर्तमानमें आक्षेप करता है और भाव निक्षेप वर्तमानके गुणमें ही वर्तमान गुणका कथन करता है, इस कारणसे यहाँ कालभेदसे भेद हो गया है।

दिङ्मात्रमत्र कथितं व्यासादपि तच्चतुष्टयं यावत्।
प्रत्येकमुदाहरणं ज्ञेयं जीवादिकेषु चार्थेषु ॥ ७४५ ॥

संक्षेपसे निक्षेपोंके वर्णनकी परिसमाप्ति—यहाँपर चारों निक्षेपोंका संक्षेपमें स्वरूप कहा गया है। इसका विस्तारसे कथन और प्रत्येक निक्षेपका उदाहरण यह पदार्थोंमें घटित किया जा सकता है। यहाँ प्रसङ्गवश निक्षेपोंका संक्षेपमें कथन कर दिया गया है। जैसे जिन नाम रख दिया तो वह नाम जिन है, यह नाम निक्षेप का विषय है और जिनेन्द्रकी प्रतिमामें 'जिन' ऐसा नाम रख दिया तो यह स्थापना किया है और जो आगे भगवान होंगे उनको अभीसे भगवान कह देना यह द्रव्य निक्षेप है, और जो वर्तमानमें हो भगवान हैं उनको भगवान कह देना यह भावनिक्षेप है।

उक्तं गुरुपदेशान्नयनिक्षेप प्रमाणमिति तत्त्वत्।
द्रव्यगुणपर्यायाणामुपरि यथासंभवं दधाम्यधुना ॥७४६॥

द्रव्य, गुण, पर्यायोंके ऊपर नय, प्रमाण व निक्षेपोंके विषय विवरणका आख्यान—गुरुके उपदेशसे यह सब कथन यहाँ किया है ऐसा ग्रन्थकार कह रहे। नय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निक्षेप और प्रमाणका स्वरूप यहाँ कहा गया है, अब उनको द्रव्य, गुणपर्यायोंके ऊपर यथायोग्य घटित किया जा रहा है अर्थात् जो कुछ नय प्रमाणका वर्णन किया था उसको निक्षेपोंपर घटित करेंगे। तो इसमें सर्वप्रथम द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयोंका विषय बतलाया जायगा। पीछे प्रमाणका विषय बतलाया जायगा।

तत्त्वमनिर्वचनीयं शुद्धं द्रव्यार्थिकस्य भवति मतम्।
गुणपर्ययवद्द्रव्यं पर्यायार्थिकनयस्य पक्षोऽयम् ॥ ७४७ ॥

द्रव्यगुण, पर्याय प्रयोगमें द्रव्यार्थिक नयका स्वरूप— शुद्ध द्रव्यार्थिककी दृष्टिसे तत्त्व अनिर्वचनीय होता है। और तत्त्व गुण पर्याय वाला है, द्रव्य गुण पर्याय वाला है, ऐसा जो कुछ पक्ष है वह पर्यायार्थिकनयका पक्ष है। यहाँ यह बताया जा रहा है कि शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकी दृष्टिमें तो अनिर्वचनीय होता है उसका कथन नहीं होता। और जो कथन किया जा रहा है जैसे गुण पर्याय वाला द्रव्य है, इस तरहसे जो कुछ भी तत्त्वका निरूपण है वह सब द्रव्यार्थिक नयका पक्ष है। सारांश यह है कि अभेद बुद्धिसे जो कुछ दर्शन है वह तो द्रव्यार्थिक नय है और उसमें भेदबुद्धि करके जो भी कथन किया जाता है वह पर्यायार्थिक नय है। कथनभेद किए बिना हो ही नहीं सकता। अतः जितना भी कथन है वह सब पर्यायार्थिकनयका विषय है। तो जो द्रव्यार्थिकनय निरखता है उसे जान लिया। अब उस विषयका जो प्रतिपादन है वह सब पर्यायार्थिकनयका पक्ष कहलाता है। जो कुछ भी निश्चयनयसे जाना है वह जाना ही है, वह अखण्ड है, निर्विकल्प है, एक रूप है, अब उसमें धर्म धर्मीका भेद किए बिना प्रतिपादन तो नहीं हो सकता। मूलमें भेद धर्म धर्मीका भेद प्रतिपादन है। तो जब भेद पूर्वक कथन होता है वह सब पर्यायार्थिकनयका विषय होता है।

यदिदमनिर्वचनीयं गुणपर्ययवत्तदेव नास्त्यन्यत्।
गुणपर्ययवद्यदिदं तदेव तत्त्वं तथा प्रमाणमिति ॥७४८॥

द्रव्यगुणपर्याय प्रयोगमें प्रमाणका विषय— जो तत्त्व अनिर्वचनीय है वही गुणपर्याय वाला है, दूसरा और गुण नहीं। इस प्रकारका जो निरूपण है वह प्रमाण का विषय है। तत्त्व अनिर्वचनीय है यह तो द्रव्यार्थिकनयका विषय है। और, गुण पर्याय वाला वस्त्व है यह द्रव्यार्थिकनयका विषय है। और जहाँ यह समझा कि जो ही अनिर्वचनीय तत्त्व है वही गुण पर्याय वाला है तो यह प्रमाणका विषय हो गया क्योंकि प्रमाणमें दोनोंके विषयको ग्रहण किया। उस ज्ञात वस्तुमें जो विशेषांश है वह तो पर्यायार्थिकनयका विषय है और सामान्य विशेषात्मक उभयात्मक जो वस्तु है वह प्रमाणका विषय है। प्रमाण एक ही समयमें अविरोधरूपसे दोनों धर्मोंको विषय करता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। तो निश्चयनय हुआ अभेदग्राहीज्ञान, पर्यायार्थिकनय हुआ भेदग्राहीज्ञान और इन दोनों नयोंमें मैत्री करके दोनोंको समान रूपसे परिचयमें लाना।

यद्द्रव्यं तन्न गुणो योपि गुणस्तन्न द्रव्यमिति चार्थात्।
पर्यायोपि यथा स्याद् ऋजुनयपक्षः स्वपक्षमात्रत्वात् ॥७४९॥

यदिद द्रव्यं स गुणो योपि गुणो द्रव्यमेतदेकार्थात्।
तदुभयपक्षे दक्षो विवक्षितः प्रमाणपक्षोऽयम् ॥७५०॥

द्रव्यगुणपर्यायप्रयोगमें भेदपक्ष व अभेदपक्ष—इन दो गाथाओंमें भेद और अभेद पक्षकी बात कही गई है। जो द्रव्य है वह गुण नहीं है जो गुण है वह द्रव्य नहीं है। तथा जो द्रव्य गुण है वह पर्याय नहीं है। यह तो भेद पक्षकी बात है। द्रव्यका स्वरूप और है गुणका स्वरूप और है। द्रव्य, गुणपर्याय इन तीनोंका स्वरूप न्यारा न्यारा है और इस तरह न्यारे स्वरूपको निरखना यह ऋजुसूत्रनयका पक्ष है। जो जैसा है उसको अन्यकी अपेक्षा बिना, अन्यका सम्बन्ध जोड़े बिना जानना यह ऋजुसूत्रनयका विषय है, क्योंकि भेद पक्ष ही पर्यायार्थिकनयका पक्ष है। तथा जो द्रव्य है वही गुण है, जो गुण है वही द्रव्य है, ऐसा कथन आया तो यह अभेदपक्षका कथन हो गया। तो पर्यायार्थिकनय तो भेद पक्षका समर्थन करता है और द्रव्यार्थिकनय अभेदपक्षका समर्थन करता है। यों इन दोनो नयोंमें परस्पर भेद है।

पृथगादानमशिष्टं निक्षेपो नयविशेष इव इस्मात्।
तदुदाहरणं नियमादस्ति नयानां निरूपणावसरे ॥७५१॥

नयनिरूपणावसरमें निक्षेपोंका उदाहरण आनेसे नय प्रमाणके समान निक्षेपोंके स्वतन्त्र निरूपणकी अनावश्यकता—इस गाथामें यह बता रहे हैं कि निक्षेप एक नय विशेषकी तरह प्रतीत होता है और निक्षेपोंका उदाहरणनयोंके विवेचन में बताया गया है। जैसे कि नाम निक्षेप स्थापना निक्षेप और द्रव्य निक्षेप, ये तीन निक्षेप द्रव्यार्थिकनयके विषय हैं। भाव निक्षेप पर्यायार्थिकनयका विषय है। अन्तर नयोंकी अपेक्षासे नाम निक्षेप, समभिरूढ़नयका विषय है द्रव्य और द्रव्यनिक्षेप नैगमनय का विषय है भावनिक्षेप ऋजुसूत्रनयका विषय है। तथा एवंभूतनयका विषय है। जिस निक्षेपने जिस प्रकारके अंशको ग्रहण किया उस ढङ्गसे वे नयके विषय बनते हैं। तो चूंकि निक्षेपका स्वतंत्र निरूपण करना व्यर्थ था, क्योंकि निक्षेपोंके उदारहण नयोंके विवेचनमें आ ही जाते हैं, फिर भी निक्षेपोंका जो वर्णन किया है वह प्रवृत्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यवहार चलानेके लिए किया गया है । अतः निक्षेपका वर्णन करना भी कार्यकारी सिद्ध होता है ।

अस्ति द्रव्यं गुणोऽथवापर्यायस्तत्त्रयं मिथोऽनेकम् ।
व्यवहारैक विशिष्टो नयः स वाऽनेकसंज्ञको न्यायात् ॥७५२॥

द्रव्य गुणपर्याय प्रयोगमें एकपक्ष व अनेकपक्ष— अब इस प्रसङ्गमें नयपक्ष की चर्चा चलायी जा रही है । किस नयमें कैसा दृष्ट होता है और प्रमाण उसे किस तरह निरखता है, यह कुछ उदाहरण देकर विवेचित किया जायगा । इस गाथामें यह कह रहे हैं कि द्रव्य गुण और पर्याय ये हैं और ये परस्पर अनेक हैं याने जब स्वरूप दृष्टि की जाय तो द्रव्यका जो स्वरूप है वह गुणका स्वरूप नहीं, गुणका जो स्वरूप है वह द्रव्य पर्यायका नहीं, पर्यायका जो स्वरूप है वह द्रव्य गुणका नहीं । इस कारणसे ये तीनों ही अनेक हैं इन्हें व्यवहार विशिष्ट अनेक संज्ञकनय कहना चाहिए अर्थात् भेद रूपसे इन्हें ग्रहण किया इस कारण तो व्यवहार हुए, व्यवहार नाम पर्याय का है, अंशका है । एक अखण्ड वस्तुमें अंश अंशका बोध किया गया तो पर्याय विशिष्ट को देखा गया । यों ये पर्याय विशिष्ट अनेक पर्यायार्थिकनयका पक्ष है कि द्रव्य गुण अथवा पर्याय ये तीनों ही अनेक हैं । इस तरह पर्याय विशिष्ट अनेक पर्यायार्थिक नयका पक्ष बताकर अब इससे विरुद्ध विषयको ग्रहण करले । नय पक्षकी बात कह रहे हैं ।

एवं सदिति द्रव्यं गुणोऽथवा पर्ययोऽथवा नाम्ना ।
इतरद्वयमन्यतरं लब्धमनुक्तं स एकनयपक्षः ॥७५३॥

द्रव्य गुण पर्यायप्रयोगमें पर्याय थिनयका पक्ष—द्रव्य अथवा गुण अथवा पर्याय ये तीनों ही एक नामसे सहित कहे जाते हैं । अर्थात् सत् न केवल द्रव्य है न गुण है न पर्याय है, किन्तु तीनों ही अभिन्न रूप एक सत् हैं और ऐसी स्थितिमें एकके कहनेसे बाकी दो का बिना कहे ही ग्रहण हो जाता है । द्रव्य कहा तो उसके साथ गुण और पर्याय तो आ ही गए । गुण कहा तो द्रव्य पर्याय उसके साथ आ ही गए । पर्याय कहा तो द्रव्य और गुण उसके साथ आ ही गए, क्योंकि कोई द्रव्य ऐसा नहीं है कि जिसमें शक्ति न हो परिणमन न हो, फिर भी द्रव्य कहलाये । कोई गुण ऐसा नहीं होता । उसके गुण न हों, आश्रय न हों, उनका अभेद आधार न हो, परिणमन न हो फिर भी गुण कहलाये, ऐसा कोई गुण नहीं है । पर्याय भी ऐसी कोई नहीं होती कि जिसका न द्रव्य है न गुण है । किसकी पर्याय है, किस शक्तिका परिणमन है, किस द्रव्यमें परिणमन हुआ । द्रव्य गुण माना ही नहीं तो पर्याय क्या ठहरेगा ? तो पर्याय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी कोई स्वतंत्र नहीं है तो एकके कहनेसे बाकीके दोका बिना कहे हुए ही ग्रहण हो जाता है। इस कारण द्रव्य गुण पर्याय ये तीनों ही एक नामसे सत् कहे जाते हैं। यह है एक पर्यायार्थिकनयका पक्ष। पर्यायार्थिक दृष्टिसे तो देखा पर उन सबको एक सत्‌रूप बनाकर देखो तो यही हुआ एक नयका पक्ष।

न द्रव्यं नापि गुणो नच पर्ययो निरंशदेशत्वात्।
व्यक्तं न विकल्पादपि शुद्धद्रव्यार्थिकस्य मतमेतत् ॥७५४॥

द्रव्यगुणपर्याय प्रयोगमें शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका पक्ष—अब इस गाथामें शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका पक्ष बना रहे हैं। ऊपर की दो गाथाओंमें पर्यायार्थिकनयका पक्ष कहा है अब यहाँ उन दो नय पक्षोंके प्रतिपक्षमें शुद्ध द्रव्यार्थिकनयके पक्षकी बात कही जा रही है। न द्रव्य है न गुण है न पर्याय है और वह विकल्पसे भी व्यक्त नहीं हो सकता है, क्योंकि वह निरंश देशात्मक है। जो भी तत्त्व है, सत् वस्तु है वह निरंश देशात्मक है, अखण्ड है। जैसे एक परमाणु वह एक प्रदेशी है, अखण्ड है यह स्पष्ट समझमें आनेपर जो असंख्यात प्रदेशी है, जैसे जीव द्रव्य धर्म अधर्म द्रव्य वे भी निरंश हैं अर्थात् उनका खण्ड नहीं होता, इसी प्रकार अनन्त प्रदेशोंमें शक्ति भी निरंश है अर्थात् आकाशका भी कोई अंश नहीं हो सकता और उसका प्रमाण यह है कि धर्म, अधर्म, जीव और आकाशमें जो परिणमन होता है वह परिणमन सर्व प्रदेशोंमें वही मात्र एक होता है, इस कारण यह अनेक प्रदेशी होकर भी निरंश देशात्मक है। इस कारण शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमें न तो द्रव्य है न गुण है न पर्याय है, और न विकल्पसे भी वह व्यक्त हो सकता है क्योंकि विकल्प भेद उत्पन्न करेगा और शुद्ध द्रव्यार्थिकनय भेदको निरख नहीं रहा है। इस कारणसे शुद्ध द्रव्यार्थिकनयके पक्षमें द्रव्य गुण, पर्याय और व्यक्तता इन सबका अभाव है।

द्रव्यगुणपर्ययाख्यैर्यदनेकं सद्विभिद्यते हेतोः।
तदभेद्यमनंशत्वादेकं सदिति प्रमाणमतमेतत् ॥७५५॥

द्रव्यगुण पर्याय प्रयोगमें एकानेकपक्षव्यापक प्रमाणका विषय—इस गाथामें प्रमाणपक्षकी बात कही जा रही है। कारणवश जो विभिन्न किया गया है पदार्थ जैसे सत्‌का पर्यायके द्वारा अनेक रूपसे भेद किया गया है यह द्रव्य है, गुण है, पर्याय है आदिक रूपसे जो उसे पृथक रूपसे विवेचित किया गया है वही सत् अंश रहित होनेसे अभिन्न एक है। यही है एक अनेकात्मक प्रमाणपक्ष। एक और अनेक इनका जब पृथक पृथक दृष्टिमें व्यवहार हो रहा था तब तो यह एक एक नय पक्ष था लेकिन जहाँ अभिज्ञान आया कि जो ही हेतुवश पर्यायोंके रूपसे अनेक रूप विभिन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किया गया है वही सत् अंशरहित होनेसे अभिन्न एक है । इस तरह दोनोंका जो अविरुद्ध रूपसे जोड़ किया गया है यह हुआ उभयका प्रमाणपक्ष । तो एक और अनेक विषयसे सम्बन्धित यहाँ चार पक्ष उपस्थित किए गए हैं । पर्याय विशिष्ट अनेक पर्यायार्थिकनय इसकी दृष्टिमें द्रव्य, गुण पर्याय तीनों ही अनेक हैं । दूसरे हैं, एक पर्यायार्थिकनय इसकी दृष्टिमें द्रव्य गुण, पर्याय ये तीनों ही एक नामसे सत् कहे जाते हैं । तीसरा है शुद्ध द्रव्यार्थिकनय । इसकी दृष्टिमें न द्रव्य है न गुण है न पर्याय है और न विकल्पसे भी व्यक्त है । अब इन्हीं तीन नय पक्षोंमें जो अभिज्ञान हुआ, जो इस दृष्टिमें ऐसा है वही इस दृष्टिमें ऐसा है, इस तरह जैसा कि जो सत् पर्याय पर्याय द्रव्य गुण आदिकके द्वारा अनेक रूप भिन्न भिन्न किए गए वही सत अंशरहित होनेसे अभिन्न एक है । यह उभयरूप प्रमाण पक्षकी बात है ।

अपि चास्ति सामान्यमात्रादथवा विशेषमात्रत्वात् ।
अविवक्षितो विपक्षो यावदन्यः स तावदस्ति नयः ॥ ७५६ ॥

अस्ति पक्ष—वस्तु सामान्य मात्रसे है अथवा विशेष मात्रसे है । यहाँ जब प्रतिपक्ष नय गौण रहता है तब तक अनन्यरूपसे एक अस्तिनय ही प्रधान होता है । यहाँ अस्तिनास्ति पक्षके विषयमें पूर्वकी तरह चार पक्षोंमें बात कही जायगी । सर्व प्रथम अस्ति नयकी बात कही जा रही है । इस नयकी दृष्टिमें पदार्थ अनन्य रूपसे एक अस्ति है । यहाँ विशेषकी अविवक्षा की गई है, एक सामान्य रूपसे अस्तित्व दिखाया गया है । क्योंकि जो सामान्यरूपसे अस्तित्व है वह विशेषरूपसे तो नहीं है । तो यहाँ ही उन दोनोंमेंसे केवल एक अस्तिको ही विषय किया जा रहा है । तो इस दृष्टिमें यह एक अस्तित्व नय कहलायगा । अस्तित्वनयके पक्षमें वस्तु सामान्य मात्रसे है अथवा जब विशेष मात्रसे भी अस्तित्व सोचा जा रहा हो तब वहाँ भी केवल विशेष मात्रको ही तका जारहा और उस दृष्टिमें अनन्यरूपसे वह अस्त है अर्थात् है इस तरह अस्तिनयमें अस्तित्व मात्र ही दृष्टिगोचर होता है ।

नास्ति च तदिह विशेषैः सामान्यस्याविवक्षितायां वा ।
सामान्यैरितस्य च गौणत्वे सति भवति नास्ति नयः ॥७५७॥

नास्ति पक्ष—इस गाथामें नास्तिनयके पक्षका विषय बताया जा रहा है । वस्तु सामान्यकी अविवक्षा नहीं है । जब सामान्यने अस्तित्वकी विवक्षा की थी तब वहाँ अस्ति दीख रहा था । अब जब सामान्यकी विवक्षा नहीं रखी जारही है तो इस दृष्टिमें नास्तित्व देखा जा रहा है । तो जब सामान्यकी विवक्षा न रही तब विशेषकी बात आई । तो विशेषरूपसे तो नास्ति है, क्योंकि जब सामान्यसे अस्तित्वकी चर्चा है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसे गौण किया तो वह न रहा अथवा विशेषकी अविवक्षामें सामान्यरूपसे नहीं है, यह उसका भाव समझिये ! तो यहाँ दोनों ही दृष्टियोंमें नास्तिनयकी प्रधानता रही, अर्थात् जिस दृष्टिमें केवल नास्तिनय ही देखा जा रहा हो वहाँ भी नास्ति ही विषय पड़ रहा है। इस प्रकार अस्ति नास्तिके सम्बन्धमें यह द्वितीय पक्षकी बात कही गई।

द्रव्यार्थिकनयपक्षादस्ति न तत्त्वं स्वरूपतोऽपि ततः ।
नच नास्ति परस्वरूपात् सर्वविकल्पातिगं यतो वस्तु ॥७५८॥

अस्ति नास्तिके सम्बन्धमे द्रव्यार्थिकनयका विषय—इस गाथामें द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे वस्तुकी चर्चा की जा रही है। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे वस्तु स्वरूपसे भी अस्तिरूप नहीं है। उसका कारण यह है कि वस्तुका स्वरूप सर्वविकल्पों से रहित होता है। द्रव्यार्थिकनय नास्तिको क्या ग्रहण करे, स्वरूपसे भी अस्ति है इतना मात्र भी विकल्प द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे नहीं उठ पाता है क्योंकि द्रव्यार्थिकनय वस्तुको सर्व विकल्पोंसे अतीत निरखता है। जहाँ विकल्प होते हैं कुछ भी भेद जगता है वह सब पर्यायार्थिकनय है, व्यवहारनयका विषय है। तो द्रव्यार्थिकनय किसी भी प्रकारका भेद नहीं बन सकता है अतएव इस नयकी दृष्टिमें वस्तुस्वरूपसे भी अस्ति नहीं है। यद्यपि यह बात सत्य है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपहै अस्ति है लेकिन यह भी एक विकल्प हुआ ना और विकल्पको ग्रहण करने वाला पर्यायार्थिकनय होता है, इस कारण पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें यह भी विकल्प नहीं है स्वरूपसे अस्तित्व भी नहीं दिखता है केवल एक द्रव्य अनुभवमें है। यह शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का पक्ष है।

यदिदं नास्ति स्वरूपाभावादस्ति स्वरूपसद्भावात् ।
तद्वाच्याव्ययरचितं वाच्यं सर्वं प्रमाणपक्षस्य ॥७५९॥

अस्ति नास्तिके सम्बन्धमें प्रमाणका विषय अब इस गाथामें प्रमाणपक्ष की बात कही जा रही है। प्रमाणकी कुञ्जी अभिज्ञान पद्धति है अर्थात् द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकनय दोनोंके विषयमें अविरुद्ध रूपसे संजो देना प्रमाणका विषय है। इस गाथामें कह रहे हैं कि जो वस्तु स्वरूपाभावसे नास्तिरूप है और जो स्वरूप सद्भावसे अस्तिरूप है वही वस्तु विकल्पातीत है। ऐसा यहाँ अभिज्ञान पूर्वक जो परिचय हुआ है वह सब प्रमाणपक्ष है। उक्त तीन गाथाओंमें तीन पक्ष बताये गए थे। एक तो बताया गया था स्वरूप सद्भावसे अस्ति होना। अस्तिनयकी प्रधानतामें यह विषय कहा गया था। यह भी वस्तुका धर्म है। दूसरे नास्तिनयपक्षमें यह कहा गया था कि स्वरूपाभावसे वस्तु नास्तिरूप है, जिसकी अविवक्षा हो गई उस अविवक्षामें वहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नास्तित्व है. तब तीसरी गाथामें द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमें वस्तुको विकल्पातीत कहा गया है। अर्थात् स्वरूपसे अस्ति है इतना भी कथन विकल्परूप है, भेदरूप है, पर द्रव्यार्थिकनय अभेदको विषय करता है अतएव वह विकल्पातीत ही वस्तु है इसका समर्थन करते हैं। अब इस गाथामें तीन नयपक्षोंका अविरोधरूपसे परिचय किया गया है। जो वस्तु स्वरूप भावसे नास्तिरूप है स्वरूप सद्भावसे अस्तिरूप है वही वस्तु विकल्पातीत है। यों उक्त तीन नयपक्षोंका अविरुद्धरूपसे एक वस्तुमें स्थापना यह प्रमाणपक्ष कहलाता है। यहाँ मुख्यतया वह बात जानना कि व्यवहारपक्ष और निश्चय पक्ष दो की बात बताकर फिर प्रमाणपक्षसे स्थापना की गई है। बाकी व्यवहारपक्ष नाना प्रकारका होता है तो उस व्यवहारपक्षको यहाँ संक्षेपमें केवल दो दो भागोंमें ही बताया गया है। जैसे एक अनेक पक्षमें पर्याय विशिष्ट अनेक पर्यायार्थिकनय और एक पर्यायार्थिकनय। ये दोनों ही व्यवहारनय हुए फिर निश्चयनयको शुद्ध द्रव्यार्थिकनयके रूपमें कहा। फिर इन दोनों नयोंने अविरोधरूपसे एक वस्तुमें सद्भाव बताया। इसी तरह व्यवहारनयका दो भागोंमें अस्ति नास्तिके संदर्भमें प्रकट किया। अस्तिनय नास्तिनयसे दोनों व्यवहारनय हैं और द्रव्यार्थिकनयमें विकल्पातीत वस्तु है इन दोनों नयोंका जोड़ करके इस गाथामें प्रमाणपक्षकी बात कही गई है।

उत्पद्यते विनश्यति सदिति यथास्वं प्रतिक्षणं यावत्।
व्यवहार विशिष्टोऽयं नियतमनित्यो नयः प्रसिद्धः स्यात् ।७६०।

नित्यपक्ष और अनित्यपक्षके विषयमें अनित्य व्यवहारनयका निरूपण

अब नित्यपक्ष और अनित्यपक्षके सम्बन्धमें पक्षग्राह्यता और पक्षसे अतिक्रान्तपना ये सब दिखायेंगे। इस गाथामें यह बताया जा रहा है कि नित्य और अनित्यपक्षमें जो इस अंशका बोध होता है कि सत् पदार्थ अपने आप प्रतिक्षण उत्पन्न होता है और विनष्ट होता है। यह व्यवहार वाला अनित्यनय अनित्य व्यवहार कहलाता है। यहाँ ज्ञाताने यह दृष्टि रखी कि सत् वही है जो परिणमनशील हो। जो परिणमनशील नहीं है वह सत् नहीं हो सकता। तो सत् अपने आप ही प्रतिक्षण उत्पन्न होता और विनष्ट होता, क्योंकि सत् पदार्थमें ऐसा स्वभाव ही पड़ा हुआ है। बस इस प्रकारका जो व्यवहार किया जाता है वह अनित्य पर्यायार्थिकनय है।

नोत्पद्यते न नश्यति ध्रुवमिति सत्स्यादनन्यथावृत्तेः।
व्यवहारन्तर्भूतो नयः स नित्योप्यनन्यशरणः स्यात् ॥७६१॥

नित्यपक्ष व अनित्यपक्षके विषयमें नित्य व्यवहारनयका निरूपण—
सत् न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट ही होता है किन्तु वह नित्य है, क्योंकि उसमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्य प्रकारका भाव नहीं बनता। यह भी तो एक दृष्टिमें ज्ञात हो रहा है। इसे कहते हैं अनन्यशरण नित्यव्यवहारनय। इसमें नित्यताका व्यवहार किया गया है। जो सत् है वह उत्पन्न नहीं होता। जो सत्का जो अबाध एक शाश्वत स्वरूप है जिस स्वभावमें वह पदार्थ है वह तो वही रहता है। वह तो उत्पन्न नहीं होता और वही स्वभाव नष्ट भी नहीं होता। जब उत्पन्न होना नष्ट होना नष्ट है तो उसमें अन्यथाभाव भी नहीं जैसे आत्मामें चैतन्यस्वरूप, वह न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है और न कभी चेतनसे अचेतन बन पाता है, इस कारण वह नित्य है, ऐसा यह व्यवहार अपने पक्षमें नियत है। नित्य व्यवहारनय वस्तुकी नित्यता देखे, उसीको देखनेमें यह लग रहा है तो अब इसके लिए वही विषय तो शरण है। अन्य विषयकी ओर किसी भी नयकी दृष्टि नहीं होती। नय अपने पक्षको ही कहता है, तो ऐसा व्यवहार नित्य व्यवहारनय है। जहाँ यह परखा जाय कि सत् वस्तु न उत्पन्न होती, न नष्ट होती और न उसमें अन्यथा विपरीत कोई दूसरा भाव आता है।

न विनश्यति वस्तु यथा वस्तु तथा नैव जायते नियमात् ।
स्थितिमेति न केवलमिह भवति स निश्चयनयस्य पक्षश्च ७६२

नित्यपक्ष व अनित्यपक्षके सम्बन्धमें निश्चयनयका निरूपण—जिस प्रकार वस्तु नष्ट नहीं होती उसी प्रकार वह उत्पन्न भी नहीं होती। और, तथा ध्रुव भी नहीं है यह निश्चयनयका विषय है। अनित्य व्यवहारनयने प्रतिक्षण उत्पाद व्यय देखा नित्य व्यवहारका सदा वही शाश्वत् स्वभाव देखा जो कभी न उत्पन्न होता न नष्ट होता। और, यहाँ इस शुद्ध द्रव्यार्थिकनयने अथवा निश्चयनयने यह देखा कि वस्तु न नष्ट होती न उत्पन्न होती और न ध्रुव भी है ये तीनों ही विकल्प हैं। वस्तु को यदि ध्रुवताके रूपसे देखते हैं तो एक अखण्ड वस्तुमें किसी खण्डको ही तो किया। वस्तु ध्रुव है, ऐसा सोचनेमें वस्तु एक पदार्थ और उसमें ध्रुवताकी दूसरी बात ऐसा वहाँ द्वैतभाव आया। ऐसा द्वैत निश्चयनयके पक्षमें नहीं है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों ही एक समयमें होने वाली सत्की पर्याय हैं इस कारण इन पर्यायोंको पर्यायार्थिकनय विषय करता है। लेकिन यहाँ निश्चयनयमें कौन सी वस्तु विषयभूत हुई है। सर्व विकल्पोंसे रहित वस्तु विषयभूत हुई है। यह शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका पक्ष है।

यदिदं नास्ति विशेषैः सामान्य स्याविवक्षया तदिदम् ।
उन्मज्जत्सामान्यैरस्ति तदेतत्प्रमाणमविशेषात् ॥७६३॥

नित्यपक्ष व अनित्यपक्षमें व्यापक प्रमाणका विषय—उक्त तीन गाथाओंमें नयपक्षकी बात बताई गई है। अब इस गाथामें प्रमाणपक्षकी बात कह रहे हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसकी दृष्टिमें जो वस्तुसामान्यकी अविवक्षासे विशेषके रूपसे नहीं है वही वस्तु सामान्यकी विवक्षासे है । यहां नित्य अनित्यके सम्बन्धमें जो कुछ बताया गया था उसका सम्बन्ध सामान्य विशेषसे है । सामान्यरूपसे जो वस्तुमें बात प्रतीत हुई वस्तु वस्तु उस प्रकार भी है जो विशेष दृष्टिमें प्रतीत होता है, ऐसा दोनोंका अभिज्ञान करना सो यह प्रमाण है । इस प्रमाणकी अपेक्षामें यह समझा गया कि पदार्थ नित्यानित्यात्मक है ।

अभिनवभाव परिणतेर्योयं वस्तुन्यपूर्वसमयोयः ।
इति यो वदति स कश्चित् पर्यायार्थिकनयेष्वभावनयः ॥७६४॥

पर्यायार्थिक अभावनय—अब तक भेद अभेद पक्ष, एक अनेक पक्ष, अस्ति नास्ति पक्ष, नित्य अनित्य पक्षका कुछ विवरण किया है । यों तो अनेक प्रकारके विषय बन सकते हैं, उनको कहाँ तक कहा जाय ? अब अन्तमें भाव अभाव पक्षकी बात कह रहे हैं । किस नयकी दृष्टिमें वस्तुमें भाव जच रहा, किस नयमें अभाव जच रहा, और किस नयमें दोनों नहीं जच रहे । और किस अपेक्षामें यह सभी जच रहा है । इस बातका अब कुछ गाथाओंमें वर्णन करते हैं । वस्तुमें जब नवीन परिणाम आते हैं तो नवीन परिणाम धारण करनेसे वस्तुमें नवीन ही भाव होते हैं । ऐसा जो कोई कहता है तो समझिये कि वह एक अभावनय है जो कि पर्यायार्थिकनयका व्यवहार है । इस नयमें यह देखो कि वस्तुमें नवीन पर्याय आई नया भाव आया बस यह भाव ही दिख रहा है । वस्तुमें भाव भाव होता चला जा रहा है । देखिये ! जब भाव भाव होता चला जारहा है तो उसके साथ अभाव भी होता जारहा है । जैसे घट पर्याय उत्पन्न हुई तो मृतपिण्ड पर्याय विनष्ट हुई, उसका अभाव हुआ । परन्तु भावको देखने वाले नयकी दृष्टिमें केवल भाव ही भाव समाया हुआ है और इस दृष्टिमें यह बात ज्ञात हुई कि नवीन परिणाम होता रहता है वस्तुमें इस कारण उसमें नये नये भाव बनते हैं । ऐसा जो कोई जाने तो समझना चाहिए कि वह अभाव नयको जान रहा है और यह अभाव नय पर्यायार्थिकनयोंमेंसे ही है ।

परिणममानेपि तथा भूतैर्भावैर्विनश्यमानेपि ।
नायमपूर्वो भावः पर्यायार्थिकविशिष्टभावनयः ॥ ७६५ ॥

पर्यायार्थिक भावनय—इस गाथामें पर्यायार्थिक भावनयकी बात कही जा रही । वस्तु निरन्तर परिणमती रहती है । और, उसमें पूर्व पूर्व भाव नष्ट होते रहते हैं । फिर भी वस्तुमें नवीन भाव नहीं होता, जो था सो ही रहता है । यह पर्यायार्थिक भावनयने परखा । द्रव्यार्थिक भावनय यह देख रहा है कि वस्तुके परि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पन्न होनेपर भी और उसमें पूर्व पूर्व भावके नष्ट होनेपर भी जो वस्तुका स्वभाव है, भाव है वह नष्ट नहीं होता, उसम अभाव नहीं बनता, उसमें उल्टी बात नहीं बनती। तो इसने ऐसा भाव देखा जिसका कि कभी अभाव नहीं हो सकता। इस कारण इसे पर्यायार्थिक भावनय कहा गया है।

शुद्धद्रव्यादेशादभिनवभावो न सर्वतो वस्तुनि।
नाप्यनभिनवश्च यतः स्यादभूतपूर्वो न भूतपूर्वो वा। ७६६।

भाव व अभावके सम्बन्धमें शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका विषय—शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे वस्तुमें सर्वथा नवीन भाव भी नहीं होता और पहिला भाव भी नहीं रहता। यानि वस्तु न नवीन होती न पुरानी होती, किन्तु जैसी है वही रहती है। यह शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टिमें निरखा जा रहा है। उसने शुद्ध द्रव्य देखा न वह भाव देख रहा न अभाव देख रहा। किसी भेदको भी नहीं ग्रहण कर रहा, किन्तु सर्व विकल्पोंसे परे एक शाश्वत स्वरूपको तक रहा। यों शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टिसे वस्तु न नवीन है, न पुरानी है वह निरखा जाता है।

अभिनवभावैर्यदिदं परिणममानं प्रतिक्षणं यावत्।
असदुत्पन्नं नहि तत्सन्नष्टं वा न प्रमाणमतमेतत् ॥७६७॥

भाव व अभावपक्षमें व्यापक प्रमाणका विषय—जोसत् प्रति समय नवीन नवीन भावोंसे परिणमन करता है वह असत् तो उत्पन्न नहीं हुआ और वहाँ सत् विनष्ट नहीं हुआ। पूर्वमें नयके तीन पक्षोंमें जो बातें पृथक पृथक दिखाई गई हैं वे ही सब बातें यहाँ प्रमाणपक्षमें बताई जा रही हैं। जो सत् नवीन भावोंसे परिणमा वह असत् उत्पन्न नहीं हुआ और न सत् नष्ट हुआ। यों सबकी सम्हाल करते हुए वस्तुके सर्वस्वको ग्रहण करने वाला यह प्रमाण पक्ष है।

इत्यादि यथासम्भव मुक्तमिवानुक्तमपि च नयचक्रम्।
योज्यं यथागमादिह प्रत्येकमनेक भावयुतम्। ७६८।

अन्य नयोंकी भी उक्त पद्धतिसे यथासम्भव योजनाका निर्देश—इत्यादिक अनेकनय समूह हैं, उनमेंसे कुछ कहे गए। सब तो नहीं कहे जा सकते। तो अनेक धर्मोंको धारण करने वाला और भी नय समूह जो यहाँ नहीं बताया गया उसे भी इस तरह घटित कर लेना चाहिए। नयोंमें जो बात दृष्टिमें आई आगमके अनुसार जहाँ जैसी अपेक्षा हुई उस तरह घटित कर लेना चाहिए। इस प्रमाण और निक्षेपके प्रसंग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में प्रमाण और निक्षेपका वर्णन करनेके बाद और नयोंका भी वर्णन इससे पहिले कर चुकनेके पश्चात् यहाँ तीनोंका होना और एक वस्तुमें घटित करना यहाँ अंश और अंशीका निरखना यह सब दिखाया गया है। व्यवहारनय तो भेदको ग्रहण करता है। भेद नाना होते हैं इस लिए व्यवहारनय भी नाना होते हैं। व्यवहारनय भेदको ग्रहण करता, अभेद एक ही होता है और प्रमाण दोनों नयोंके विषयको ग्रहण करता है। जो वस्तु इस प्रकार है वही वस्तु इस प्रकार है इस तरह दोनों तत्वोंका अभिज्ञान करना सो प्रमाण पक्ष बताया है। ये सब कथन करनेके बाद नयके सम्बन्धमें यह भी बताया कि जितनी भी दृष्टियाँ हैं, जितनी विवक्षायें हैं, जितने भेद विकल्प किए जा सकते हों नयोंकी संख्या उतनी होती है मगर ये दो बातें प्रत्येक जगह मिलेंगी। भेद करके कहना, अभेद कहना और उसका यथावत निरखना, ये तीनों बातें व्यवहार निश्चय और प्रमाणके सर्व ही संदर्भोंमें घटित कर लेना चाहिए।

Version 1